THE BOOK WAS DRENCHED

UNIVERSAL
LIBRARY

OU_178781

UNIVERSAL
LIBRARY

OSMANIA UNIVERSITY LIBRARY

Call No. H83 T53 S Accession No. G.H. 2805

Author तुर्गनेव

Title स्वाभिमानी १९६०

This book should be returned on or before the date last marked below.

सत्साहित्य प्रकाशन

स्वाभिमानी

—तुर्गनेव के सुविख्यात उपन्यास का हिन्दी-रूपान्तर—

अनुवादक
जगन्नाथप्रसाद मिश्र

भूमिका : रेखाचित्र
बनारसीदास चतुर्वेदी

१९६०
सस्ता साहित्य मंडल, नई दिल्ली

प्रकाशक
मार्तण्ड उपाध्याय
मंत्री, सस्ता साहित्य मण्डल
नई दिल्ली

प्रथम बार : १९६०

मूल्य

दो रुपये

मुद्रक
सत्यपाल धवन,
सैंट्रल इलैक्ट्रिक प्रेस,
दिल्ली

प्रकाशकीय

अंतर्राष्ट्रीय ख्याति के लेखकों में रूस के साहित्य-स्रष्टा तुर्गनेव का अपना स्थान है। उनकी कृतियों की उपयोगिता किसी देश-विशेष के लिए नहीं है, सारे संसार के लिए है। यही कारण है कि उनकी कहानियों तथा उनके उपन्यासों के अनुवाद विश्व की अनेक भाषाओं में हुए हैं और आज उन्हें बड़ी रुचि के साथ सर्वत्र पढ़ा जाता है।

प्रस्तुत रचना उनके 'पूनिन और बैबूरिन' नामक उपन्यास का रूपान्तर है। इसमें रूसी जीवन के उस काल के बड़े ही हृदयस्पर्शी चित्र उपस्थित किये गए हैं, जबकि वहां का दलित और अभाववग्रस्त वर्ग आभिजात्य कुल की दासता की पीड़ा से छटपटाकर मुक्त होने के लिए संघर्ष कर रहा था। उस संघर्ष में विजय के साथ इस रचना की समाप्ति होती है। कहने की आवश्यकता नहीं कि पूरा उपन्यास इतना रोचक और मार्मिक है कि उसे समाप्त किये बिना चैन नहीं पड़ता।

लेखक का विस्तृत परिचय पाठकों को हो जाय, इस दृष्टि से श्री बनारसीदास चतुर्वेदी का लिखा 'तुर्गनेव : एक रेखाचित्र' आरंभिक पृष्ठों में जोड़ दिया गया है, जिससे निश्चय ही पुस्तक की उपयोगिता बढ़ गई है। इस रेखा-चित्र तथा भूमिका के लिए हम चतुर्वेदीजी के आभारी हैं। उपन्यास का अनुवाद श्री जगन्नाथ प्रसाद मिश्र ने किया था और वह 'विशाल भारत' में प्रकाशित हुआ था।

—मंत्री

भूमिका

११ जून १९५९—स्पेसकाई।

रूस के महान् लेखक तुर्गनेव के तपोवन में मैं इधर-उधर घूम रहा था। वसन्त ऋतु थी और मौसम बड़ा सुहावना। वृक्षों की कुंजों, छोटी-मोटी सड़कों, टेढ़ी-मेढ़ी पगडंडियों और चारो ओर के प्राकृतिक सौन्दर्य की प्रशंसा करते-करते अघाता न था। मेरे दुभाषिये मि० अर्नोव ने कहा, "अब संग्रहालय भी देख लिया जाय।" मैंने कहा, "चलिये।" तत्पश्चात् वहां के संग्रहालय के दर्शन किये। एक चित्र के ऊपर लिखा था—"बैबूरिन।" मुझे बड़ा हर्ष और आश्चर्य हुआ और तुरन्त ही मैंने दुभाषिये से कहा, "'पूनिन और बैबूरिन' नामक तुर्गनेव की रचना का हिन्दी अनुवाद मैंने बहुत बरस पहले कराया था और उसे मैं अपने साथ रूस लेता भी आया हूं।" संग्रहालय के निर्देशक ने कहा, "'पूनिन और बैबूरिन' नामक लघु उपन्यास की रचना तो इसी स्थल पर हुई थी।" पैंतीस बरस पूर्व मैंने उस उपन्यास को पढ़ा था और उससे बहुत प्रभावित हुआ था। 'विशाल भारत' में पहुंचने पर मैंने उसका अनुवाद कराके छपवा दिया।

इस उपन्यास को आज फिर से पढ़ते हुए मन में नाना प्रकार के भाव उत्पन्न हुए। एक तो यह कि यह उपन्यास ज्यों-का-त्यों ताजा है। इस रचना में सन् १९१७ की रूसी क्रान्ति के साठ-सत्तर बरस पहले की स्थिति का हूबहू वर्णन किया गया है। इतिहास के रूखे-सूखे पृष्ठ भला क्या कभी ऐसा चित्र उपस्थित कर सकते थे! उपन्यास का प्रधान नायक बैबूरिन एक प्रजातन्त्रवादी है और आगे आनेवाले निहिलिस्ट तथा कम्युनिस्ट लोगों का पूर्वज। उसके चरित्र में जो दृढ़ता तथा अक्खड़पन पाया जाता है वह अत्यन्त आकर्षक है। 'पिता और पुत्र' (तुर्गनेव के

सर्वश्रेष्ठ उपन्यास) के बैजेरोव के चरित्र में भी यही गुण खूब निखरे हैं। हां, साथ में उसमें वैज्ञानिक दृष्टिकोण का भी समावेश हो गया है। इस उपन्यास में किसका चरित्र सबसे बढ़िया बन पड़ा है, यह बतलाना कठिन है। 'खांड़ की रोटी, जहां से तोड़ो वहीं से मीठी।' भोले-भाले पूनिन का या स्वाभिमानी बैबूरिन का अथवा उस जमीदारिन दादी या युवती मानसी का ? ये सभी चित्रण लाजवाब बन पड़े हैं। सब अपनी-अपनी जगह सुशोभित हैं। तुर्गनेव कोई भी चीज ऐसी नहीं लिखते थे, जिसे पढ़ते हुए मन ऊब जाय। प्रसाद तथा प्रवाह—ये दोनों गुण उनकी रचनाओं में खास तौर पर पाये जाते थे और 'स्वाभिमानी' में भी इनकी छाप स्पष्ट रूप से विद्यमान है। रूसी महिलाओं की बलिदान-भावना का क्या कहना ! मानसी में वह भावना बड़े मनमोहक रूप में मौजूद है। जब अपने पति बैबूरिन के स्वर्गवास के बाद वह कहती है—'यहां साइबेरिया में, जहां मेरे पति की समाधि है वहीं मैं रहना चाहती हूं और उनके छोड़े हुए काम को जारी रखना चाहती हूं, क्योंकि अपने जीवन के अन्त काल में उन्होंने अपनी यही आखिरी इच्छा प्रकट की थी और उनकी इच्छा को पूर्ण करना ही मेरा एकमात्र धर्म है।" तो उसके दृढ़ निश्चय को पढ़कर स्तब्ध रह जाना पड़ता है। यौवन के प्रारम्भ में वह शारीरिक प्रातिव्रत की रक्षा भले ही न कर सकी हो, पर अन्त में तो आध्यात्मिक पातिव्रत उसने खूब निबाहा।

चूंकि रूस में तुर्गनेव अत्यन्त लोकप्रिय लेखक थे, इसलिए यह अनुमान आसानी से लगाया जा सकता है कि इस उपन्यास का साधारण जनता पर कितना प्रभाव पड़ा होगा। जिस देश के पाठकों को इतना बढ़िया मानसिक भोजन मिला हो, भला वहां की जनता अपने उद्देश्यों की पूर्ति में क्यों न सफल होती !

इस उपन्यास में बैबूरिन एक जगह कहते हैं--'लोग इस आशा में दिन काट रहे हैं कि शायद एक दिन अवस्था सुधर जाय और हम स्वाधीनतापूर्वक रहते हुए स्वतन्त्र वायुमण्डल में स्वच्छन्दता के साथ

सांस ले सकें, पर यहां तो मामला बिल्कुल उल्टा ही नजर आता है—हर तरफ हालत दिन-पर-दिन बिगड़ती ही जा रही है। हम गरीबों का शोषण करके धनवानों ने हमें बिल्कुल खोखला बना डाला है। अपनी जवानी में मैंने धैर्यपूर्वक सबकुछ बर्दाश्त किया। उन्होंने मुझे पीटा भी, हां, मेरे जैसे वृद्ध पुरुष को शारीरिक दण्ड दिया गया। दूसरे अत्याचारों का मैं जिक्र नहीं करूंगा। किन्तु क्या सचमुच हमारे सामने इसके सिवा और कोई दूसरा उपाय नहीं कि हम फिर उन पुराने दिनों की याद करें ? इस समय नवयुवकों के साथ जैसा व्यवहार हो रहा है, उससे तो धैर्य की सीमा का भी अतिक्रमण हो जाता है। उससे सहनशीलता की हद हो चुकी है।"

तुर्गनेव भविष्य के द्रष्टा थे और वह जानते थे कि इन अत्याचारों का अंत आखिर क्रान्ति में ही होगा। सन् १९१७ की वह क्रान्ति उतनी ही अनिवार्य थी, जितनी सुबह के बाद शाम और शाम के बाद सुबह।

इस उपन्यास के कितने ही दृश्य दरअसल बड़े प्रभावोत्पादक बन पड़े हैं। नाटकीय ढंग से बैबूरिन की नौकरी का छूटना और घर छोड़ते समय पूनिन की वे कविताओं ने सारे दृश्य को और भी हृदयग्राही बना दिया है। गुलामी की प्रथा के बंद होने पर बैबूरिन का हार्दिक हर्ष भी बड़े कौशल के साथ चित्रित किया गया है और अंत में बैबूरिन की मृत्यु भी बड़ी शानदार है। बैबूरिन के वे अंतिम वचन—"पूनिन, क्या तुम सुनते हो ? रूस में अब गुलाम बिल्कुल ही नहीं रहेंगे ! मेरे पुराने साथी कब्र में आनंद मनाओ...अब इसमें कोई हेर-फेर नहीं हो सकता। यह एक प्रकार का वचनदान है, प्रतिज्ञा है।"—उनके हृदय से निकले हुए हैं। यह बतलाने की आवश्यकता नहीं कि स्वयं तुर्गनेव की रचनाओं ने गुलामी की प्रथा के बंद कराने में बड़ी मदद दी थी। निस्सन्देह भावी स्वाधीनता के लिए, जो ५६ बरस बाद आई, गुलामी की प्रथा का बंद होना पहला ही कदम था।

: ७ :

सन् १९२० का वह दिन अब भी मुझे याद है, जबकि मैंने कवीन्द्र श्री रवीन्द्रनाथ ठाकुर के शांतिनिकेतन के पुस्तकालय से लेकर तुर्गनेव का कोई उपन्यास पढ़ा था। पिछले चालीस बरसों में न जाने कितनी बार मैंने उस महान् रूसी लेखक की रचनाओं का अध्ययन किया है। हिन्दी में तुर्गनेव के प्रवेश कराने का सुअवसर मुझे मिला, इसे मैं अपना परम सौभाग्य मानता हूं। 'विशाल भारत' में मैंने उनकी अनेक रचनाओं के अनुवाद छपाये थे और 'फास्ट' का अनुवाद 'प्रेम-पंच' के नाम से खुद ही प्रकाशित किया था। आज यह देखकर मुझे अत्यंत हर्ष होता है कि तुर्गनेव हिन्दी में अधिकाधिक लोकप्रिय होते जा रहे हैं। उनके 'पिता और पुत्र' के तो तीन-चार अलग-अलग अनुवाद छपे हैं। तुर्गनेव ने मेरा मनोरंजन ही नहीं किया, मुझे उच्चकोटि का मानसिक भोजन भी दिया है और यदि धृष्टता क्षन्तव्य हो तो मैं कहूंगा कि मेरी साहित्यिक रुचि को परिष्कृत भी किया है। तुर्गनेव का मैं अत्यंत ऋणी हूं और 'स्वाभिमानी' के प्रकाशन द्वारा मैंने इस ऋण को आंशिक रूप से चुकाने का प्रयत्न ही किया है।

जब मैंने स्पेसकाई संग्रहालय के निर्देशक महोदय से पूछा, "क्या कोई अन्य भारतीय महानुभाव भी यहां पधारे थे?" तो उन्होंने उत्तर दिया, "जी नहीं, आप ही प्रथम भारतीय हैं, जो यहां आये हैं।" इस उत्तर से मैंने अपनेको गौरवान्वित समझा। "जाको जापर सत्य सनेहू। सो तिहि मिलत न कछु सन्देहू।" यह उक्ति सर्वथा सत्य है। तुर्गनेव के तपोवन की तीर्थयात्रा मेरे जीवन की कोई आकस्मिक घटना न थी, वह वस्तुतः उस महान् लेखक के प्रति मेरी दीर्घकालीन श्रद्धा का परिणाम थी।

तुर्गनेव ने जिस गुलामी की प्रथा का वर्णन इस उपन्यास में किया है, वह कभी की खतम हो चुकी है। पूंजीपति गये और जमींदार भी चल बसे! ज़ारशाही का भी खात्मा हो गया। लेकिन तुर्गनेव जिंदा है,

उनकी रचनाएं अब भी विद्यमान हैं और दिनोंदिन अधिकाधिक लोकप्रिय होती जाती हैं। विश्व के उस अमर कलाकार को शतशः प्रणाम !

'कीर्तिर्यस्य स जीवति।'

९९ नार्थ ऐवेन्यू,
नई दिल्ली

—बनारसीदास चतुर्वेदी

तुर्गनेव

(एक रेखाचित्र)

तुर्गनेव का जन्म २८ अक्तूबर सन् १८१८ में ओरेल नामक स्थान में हुआ था। उनकी माता का नाम वार्वरा पैट्रोवना और पिता का नाम लेफ़्टिनेंट तुर्गनेव था। माता के यहां काफ़ी धन-सम्पत्ति थी। हज़ारों एकड़ भूमि और पांच हजार दास-दासियां थीं। पिता का शरीर गठा हुआ और कंधे चौड़े थे। वह लंबे क़द के फ़ौजी आदमी थे। माता भोग-विलासप्रिय और सदा अस्वस्थ रहनेवाली थीं। तुर्गनेव के शरीर का गठन तो अपने पिता के तुल्य था, पर स्वास्थ्य पर माता की अस्वस्थता का ज़बरदस्त प्रभाव पड़ा था।

चार वर्ष की उम्र में तुर्गनेव को अपने माता-पिता के साथ जर्मनी, फ्रांस और स्विट्ज़रलैंड आदि देशों की यात्रा का सौभाग्य प्राप्त हुआ था। नौ वर्ष की अवस्था तक तुर्गनेव को ग्राम्य जीवन व्यतीत करना पड़ा। माता-पिता की ज़मींदारी थी, सैकड़ों दास-दासियां थीं और सुख के साधनों की कोई कमी नहीं थी। आस-पास का प्राकृतिक दृश्य बड़ा मनोहर था। घर से निकलकर वह खेतों तथा उपवनों की सैर किया करते थे। कहीं गिलहरियों को एक डाल से दूसरी डाल पर उछलते देखते तो कहीं सुन्दर पुष्पों की सुगंध लेते, कभी तालाब में मछलियों को अपने हाथ से आटा खिलाते तो कभी नाव में बैठकर सरोवर की सैर करते। भांति-भांति के पक्षियों का मधुर कलरव उनके कानों को प्रिय हो गया था और नाना प्रकार के वृक्षों से मानों उन्होंने मैत्री स्थापित कर ली थी। बाल्यावस्था के संस्कार जीवनभर रहते हैं। तुर्गनेव के उपन्यासों में प्राकृतिक दृश्यों का जो मनोहर वर्णन स्थान-स्थान पर

मिलता है, उसके मूल में बाल्यावस्था के ये संस्कार ही थे।

तुर्गनेव के माता-पिता का कोई आदर्श जीवन नहीं था। नौकर-चाकरों की भरमार थी। अतिथियों का आवागमन रहता था। दैनिक कार्यक्रम असंयमी ज़मीदारों की तरह का था। प्रातःकाल लोमड़ी की शिकार में बीतता, दोपहर को डटकर भोजन और विश्राम होता और संध्या के समय घर पर ही नाटक या नाच होता। उनके पिताजी कोई विशेष चरित्रवान् व्यक्ति न थे। कम-से-कम एकपत्नीव्रत के तो वे कायल नहीं थे और अनेक दासियों से उनके अनुचित संबंध की बात कही जाती थी। आदमी सीधे-सादे और लापरवाह थे। चूंकि उन्होंने एक धनाढ्य लड़की से विवाह किया था, इसलिए अपनी पत्नी का रौब उनपर ग़ालिब रहता था। तुर्गनेव की माता का स्वभाव बहुत ही खराब था। दया का तो उनमें लेश भी नहीं था। जरा-से अपराध पर दास-दासियों को कोड़े लगवाना उनके लिए एक मामूली-सी बात थी। कहा जाता है कि एक बार दो किसानों को उन्होंने साइबेरिया भेजे जाने की (जो कालेपानी के समान भयंकर दंड था) सजा दी थी। उन बेचारों का अपराध केवल इतना ही था कि जिस समय वह बगीचे में टहलने आई थीं, उस समय कार्य में व्यस्त होने के कारण वे उन्हें सलाम करना भूल गये थे! एक बार तुर्गनेव के बड़े भाई के किसी अपराध पर तुर्गनेव की माता ने अपने हाथ से उसके चूतड़ों पर दस कोड़े जमाये और स्वयं इस भयंकर कार्य को करते हुए बेहोश-सी हो गईं। वह बच्चा नंगे बदन खड़ा हुआ कांप रहा था। मां की यह दशा देखकर वह अपना रोना बंद कर चिल्लाने लगा—"अरे! अम्मा को पानी लाओ, पानी लाओ।"

तुर्गनेव ने बड़े होने पर एक बार कहा था—"यदि मुझसे छोटा-सा भी कसूर बन जाता तो पहले तो मेरे शिक्षक मुझे डांट-फटकार बताते, उसके बाद मुझपर कोड़े पड़ते। खाना बन्द कर दिया जाता और मुझे बगीचे में भूखे घूमना पड़ता! आंसू बह-बहकर मेरे मुंह में आते और मैं उनका नमकीन स्वाद लेकर अपनेको संतुष्ट कर लेता!" माता की

यह कठोरता तुर्गनेव को जीवन-भर नहीं भूली। तुर्गनेव ने अपनी सुप्रसिद्ध कहानी 'मूमू' में जिस क्रूर-स्वभाव स्त्री का चित्र खींचा है, वह संभवतः उनकी माता का ही चरित्र-चित्रण है।

एक बार तो माता के अत्याचारों से पीड़ित होकर तुर्गनेव ने घर से निकल भागने का विचार कर लिया था। यही नहीं, बल्कि एक रात को बारह बजे वे घर से चल भी दिये थे, पर जर्मन पढ़ानेवाले एक शिक्षक ने उन्हें घर से बाहर जाते देख लिया और समझा-बुझाकर रोक लिया। माता के अत्याचारों का बालक तुर्गनेव के स्वभाव पर बड़ा असर पड़ा, उसके पेट में धधका बैठ गया और स्वतंत्र-रूप से कार्य की प्रवृत्ति ही नष्ट हो गई। तुर्गनेव में अपने अधिकारों के लिए लड़ने-झगड़ने के साहस का जो अभाव था, उसका मूल कारण यही था कि लड़कपन में अपनी माता के अत्याचारों को देखते-देखते उनकी इच्छा-शक्ति निर्बल हो गई थी।

बाल्यावस्था में भी तुर्गनेव में चीजों के सौन्दर्य अथवा कुरूपता की जांच करने का गुण दृष्टिगोचर होता था। एक बार राज घराने की एक बुढ़िया तुर्गनेव की माता से मिलने आई। माता ने बड़े डरते हुए अपना बालक उनकी गोद में दिया। थोड़ी देर तक उस बुढ़िया की शकल-सूरत देखकर तुर्गनेव ने कहा—"तुम तो बिलकुल बँदरिया हो।" बात सोलह-आना ठीक थी। उस वक्त तो तुर्गनेव की माता चुप रही, पर पीछे उसने खूब कोड़े जमाये !

एक बार कोई थर्ड-क्लास कहानी-लेखक तुर्गनेव के घर पर पधारे। बालक तुर्गनेव ने अबतक रूसी भाषा के किसी लेखक के दर्शन नहीं किये थे। माता ने कहा—"अच्छा, इस कहानी को पढ़कर सुनाओ तो सही।" कहानी उन्हीं लेखक महोदय की थी। तुर्गनेव ने कहानी पढ़कर सुना दी। फिर आप लेखक महाशय के मुंह पर ही बोले—"आपकी कहानी अच्छी तो है, पर क्राइलोव की कहानियां आपसे अच्छी होती हैं।" इस समालोचना-प्रवृत्ति का दुष्परिणाम तुर्गनेव की पीठ को भोगना पड़ा, जिसकी याद उन्हें बहुत दिनों तक रही ! बड़े होने पर एक बार

तुर्गनेव ने कहा था—"उस कहानी-लेखक के मुंह पर ही इस तरह की बात कह देने की वजह से मेरी मां बहुत ही नाराज़ हो गई और मेरे इतने अधिक कोड़े लगाये कि अपनी मातृ-भाषा के लेखक की प्रथम भेंट को मैं ज़िंदगी-भर नहीं भूल सकता।"

उन दिनों रूस में फ्रेंच भाषा की इज्जत थी। रूसी भाषा को स्वयं रूसी लोग गंवारू भाषा समझते थे। तुर्गनेव को फ्रेंच तथा जर्मन भाषा का अभ्यास कराया गया था। तुर्गनेव ने रूसी भाषा अपनी दास-दासियों के संसर्ग से ही सीखी। शायद किसी नौकर ने ही उन्हें रूसी भाषा लिखना-पढ़ना सिखलाया। आठ वर्ष की उम्र में उन्होंने अपने एक नौकर के लड़के के साथ अपने घर की पुरानी अलमारी में से रूसी भाषा की कविता की कुछ किताबें चुराकर पढ़ना प्रारम्भ कर दिया।

नौ वर्ष की उम्र में तुर्गनेव अपने माता-पिता के साथ मास्को चले आये और वहां वह एक छात्रालय में भर्ती करा दिये गए। यहीं पर सन् १८२९ में उन्होंने अंग्रेज़ी भाषा का अध्ययन प्रारम्भ किया। आगे चलकर इस भाषा के ज्ञान के कारण उन्हें शेक्सपियर, शेली, कीट्स और बायरन इत्यादि कवियों की कविता का आनंद लेने का सौभाग्य प्राप्त हुआ। इसके बाद घर पर ही पढ़कर उन्होंने मास्को-विश्वविद्यालय की मैट्रिक की परीक्षा दी। उस समय उनकी उम्र १४ वर्ष की थी। इसके बाद वह विश्वविद्यालय में भर्ती हुए। वहां उनका मुख्य विषय था इतिहास और दर्शनशास्त्र। संयुक्त राज्य अमरीका के प्रति उनके हृदय में विशेष प्रेम था, इसलिए साथ के लड़के उन्हें मज़ाक में 'अमरीकन' कहा करते थे। इसके बाद वह सेंट पीटर्सबर्ग के विश्वविद्यालय में भर्ती हुए। इन्हीं दिनों उनके पिता की मृत्यु हो गई। उस समय उनकी माता स्वास्थ्य-लाभ करने के लिए इटली गई हुई थीं।

दास-दासियों से जहां तुर्गनेव को रूसी भाषा का ज्ञान प्राप्त हुआ, वहां उन्हें दुश्चरित्रता की शिक्षा भी इन्हीं दास-दासियों ने दी। बड़े घरों के लड़कों को नौकर-चाकर ही अक्सर बदचलन बना देते हैं। तुर्गनेव के

असंयमित जीवन का कारण वे ही हुए। तुर्गनेव ने विवाह नहीं किया और अपने जीवन-भर वह प्रेम में ही फंसते रहे—कभी किसी दासी से प्रेम किया तो कभी किसी विवाहिता स्त्री से, और कभी किसी ऐक्ट्रेस या नटी से ही! आगे चलकर तुर्गनेव के जीवन में निराशा के जो दृश्य देखने में आते हैं, उनका मुख्य कारण यही संयम-हीनता ही प्रतीत होती है। यहाँ हम उनके एक पत्र का, जो तुर्गनेव ने किसी नवयुवक साहित्य-सेवी को लिखा था, कुछ अंश उद्धृत करते हैं—

"बड़े खेद की बात है कि तुम किसी एक लड़की के ही प्रेम में उन्मत्त हो गये हो। यदि किसी ऐसी लड़की से, जो स्वभाव में बिल्कुल विपरीत हो, विवाह हो जाय तो इससे लेखक को कुछ मसाला मिल भी सकता है, पर विवाह करके निश्चिन्तता से वैवाहिक जीवन व्यतीत करने में कुछ मज़ा नहीं। कला की उन्नति के लिए कामेच्छा का तृप्त करना उतना आवश्यक नहीं है, जितना भिन्न-भिन्न स्थानों से रस ग्रहण करना। कम-से-कम मुझे तो लिखने में तभी आनंद आता है, जब किसी-से प्रेम-संबंध चलता रहे, ख़ास तौर से किसी विवाहिता स्त्री से, जो अपने को संयमित रख सके और अपना प्रबंध भी आप कर सके!"

निस्संदेह यह मार्ग पतन का है। शक्ति संयम में है, असंयम में नहीं।

सेंटपीटर्सबर्ग के विश्वविद्यालय में पढ़ने के कुछ वर्ष बाद तुर्गनेव बर्लिन (जर्मनी) पढ़ने के लिए गये। तीन वर्ष तक वहां रहकर उन्होंने बर्लिन-विश्वविद्यालय से मैट्रिक की परीक्षा पास की और फिर दर्शन-शास्त्र पढ़ना शुरू किया। यहींपर उनकी मुलाक़ात सुप्रसिद्ध अराजकवादी बाकूनिन से हुई और दोनों में घनिष्ठ मित्रता भी हो गई।

दर्शनशास्त्र की परीक्षा में वह बड़ी योग्यतापूर्वक पास तो हो गये, पर उनका मन पढ़ने में नहीं लगता था। उनकी माता यह चाहती थीं कि मेरा लड़का भी एम० ए० पास हो जाय, पर तुर्गनेव की रुचि डिग्रियों की ओर बिल्कुल नहीं थी। घर से माता के पास से जो रुपया

आता था, उसे वह नाटक देखने में उड़ा देते थे और अपने मित्र बाकूनिन के कर्जदारों को भी दे दिया करते थे ! बर्लिन में तुर्गनेव कभी किसी प्रसिद्ध साहित्यिक क्लब में बातचीत करते हुए पाये जाते थे तो कभी किसी प्रसिद्ध ऐक्ट्रेस के साथ भोजन करते हुए !

तुर्गनेव ने सत्रह-अठारह वर्ष की उम्र में कविता करना प्रारंभ कर दिया था। पहले तो उनकी माता इससे बड़ी प्रसन्न हुई और अपने लड़के को बड़ी बधाई भी दी, पर पीछे जब तुर्गनेव ने उससे कहा—"मेरी किताब की आलोचना हुई है"—तो वह रोने लगी और बोली—"यह बुरी बात है। कहां ऊचे खानदान के बेटा तुम ! और कहां वह पुरोहित का छोकरा, जिसने तुम्हारी किताब के बारे में लिखा है !" तुर्गनेव की माता की समझ में लेखक का पेशा कोई बहुत सम्मानप्रद नहीं था। वह कहा करती थी कि लेखक की वृत्ति भले आदमियों के लायक़ नहीं।

तुर्गनेव की प्रथम पुस्तक 'एक शिकारी के भ्रमण-वृत्तांत' में रूस के ग्राम्य जीवन के दृश्य बड़ी करुणाजनक भाषा में दिखलाये गए थे। इसमें दास-दासियों की दुर्दशा का चित्र छोटी-छोटी कहानियों द्वारा ऐसी सहृदयता के साथ खींचा गया था कि उन्हें पढ़कर जनता का हृदय द्रवित हो गया। रूस के ज़ार से लेकर साधारण पाठकों तक ने इस पुस्तक को पढ़ा और गुलामों की दशा पर चार आंसू बहाये। इसमें संदेह नहीं कि वहां की दासत्व-प्रथा को बंद कराने में इस पुस्तक ने बड़ी मदद दी थी। तुर्गनेव ने एक बार कहा था—"खुद रूसी सम्राट् अलेक्जेंडर ने यह ख़बर मेरे पास भिजवाई थी कि दासत्व-प्रथा को बंद करने में अन्य कारणों के साथ एक कारण मेरी पुस्तक 'एक शिकारी के भ्रमण-वृत्तांत' का पढ़ना भी था।" इस पुस्तक ने रूसी साहित्य-संसार में उनकी धाक जमा दी और उनके उत्साह को दुगुना कर दिया। इस पुस्तक की कहानियां पत्रों में पहले अलग-अलग प्रकाशित हुई थीं।

सन् १८५२ में सुप्रसिद्ध साहित्य-सेवी गोगल का स्वर्गवास हो गया।

उनके विषय में तुर्गनेव ने सेंटपीटर्सबर्ग के किसी पत्र के लिए एक लेख लिखा, पर सरकारी सेंसर ने इस लेख को अस्वीकृत करके छपने से रोक दिया। तुर्गनेव ने उसी लेख को मास्को भेज दिया। मास्को के सरकारी सेंसर ने उसे पास कर दिया। उसे इस बात का पता नहीं था कि यह लेख सेंटपीटर्सबर्ग के सेंसर-द्वारा अस्वीकृत हो चुका है। मास्को में जब यह लेख प्रकाशित हुआ तो पुलिस को बडा क्रोध आया। मामला ज़ार के कानों तक पहुंचा। उन्होने हुक्म निकाल दिया कि तुर्गनेव को पकड़कर जेल में ठूंस दिया जाय। तुर्गनेव को कारावास का दंड मिला। इससे उनकी लोक-प्रियता बढ़ गई। जहां देखो, वहां सड़क पर, बाजार में, होटलों में और घर-घर में— तुर्गनेव की चर्चा होने लगी। जिस जेल में उन्हें रक्खा गया था, उसकी सड़क पर तुर्गनेव के मित्रों की गाड़ियों का तांता लगा रहता था। कितनी ही युवतियां और युवक जेलखाने में तुर्गनेव के दर्शन के लिए गए। यहीं जेल में ही तुर्गनेव ने अपनी सुप्रसिद्ध कहानी 'मूमू' लिखी थी, जिसे कार्लाइल ने संसार की सबसे अधिक करुणाजनक कहानी बतलाया था। तुर्गनेव को एक महीने के जेलखाने के बाद रूसी ज़ार ने हुक्म दिया—"ये अपने ग्राम में अपनी ही कोठी में नज़रबंद किये जायं और इनपर पुलिस की निगरानी रक्खी जाय।" तुर्गनेव इस प्रकार अपने घर पर ही क़ैद कर दिये गए! उन्होंने अपने किसी मित्र को एक पत्र में लिखा था—"मैं अभी पूर्णतया मृत अवस्था को प्राप्त नहीं हुआ, पर जैसी गंभीर शांति में मुझे यहां रहना पड़ता है, उससे मैं अनुमान अवश्य कर सकता हूं कि क़ब्र में कैसी शांति रहती होगी।"

तुर्गनेव ने जितने ग्रंथ प्रकाशित किये, उन सबका अंग्रेज़ी में अनुवाद हो गया है और यह ग्रंथमाला विलियम हीनमेन (William Heinemann) लंदन से मिल सकती है। अंग्रेज़ी में अनुवादित ग्रंथों के नाम ये हैं—

१. रूडिन।

२. ए हाउस ऑव जैण्टिलफ़ोक

३. ऑन दी ईव

४. फादर्स एण्ड चिल्ड्रन

५. स्मोक

६. वर्जिन सॉइल

७. ए स्पोर्टसमेन्स स्कैचेज़, इत्यादि।

ये सब ग्रन्थ सत्रह भागों में प्रकाशित हुए हैं, जिसमें तेरह-चौदह भाग पढ़ने का सौभाग्य हमें प्राप्त हुआ था। उपन्यास तथा गल्पों की रचना के विषय मे हमारा ज्ञान न-कुछके बराबर है और हमने इस प्रकार का साहित्य पढ़ा भी बहुत कम है, फिर भी हम इतना अवश्य कहेंगे कि मानव-स्वभाव की भिन्न-भिन्न दशाओं का चित्रण करने में जिस हद तक तुर्गनेव सफल हुए हैं, उस हद तक पहुंचना किसी भी अच्छे-से-अच्छे लेखक के लिए अत्यन्त कठिन है। उन्नीसवीं शताब्दी के सर्वश्रेष्ठ उपन्यासकारों में उनकी गणना की जाती है और किसी-किसीका तो यह भी मत है कि उस शताब्दी के सर्वोत्तम कलाकारका पद तुर्गनेवको ही मिलना चाहिए।

तुर्गनेवमें सबसे बड़ी खूबी यह है कि उनकी रचनाओं को पढ़ते हुए कभी जी नहीं उकताता। वह अनावश्यक विवरणों से अपने पृष्ठों को नहीं भरते। विक्टर ह्यूगो के सुप्रसिद्ध उपन्यास 'ला मिज़रेबिल्स' को पढ़ते समय बीच-बीच में कभी लम्बे-लम्बे वृत्तान्तों से तबीयत ऊब जाती है और ऐसा प्रतीत होता है कि मुख्य घटना-सूत्र हमारे हाथ से छूट गया। तुर्गनेव में बड़ा भारी गुण यह है कि उनकी रचनाएं पाठक के हृदय को इतना अधिक आकृष्ट कर लेती हैं कि वह उनको बिना समाप्त किये छोड़ नहीं सकता। तुर्गनेव न कभी कोई भद्दी बात कहते हैं और न कोई अनावश्यक प्रसंग ही लाते हैं। शान्त समुद्र में जब कोई जहाज बिना हिले-डुले चला जा रहा हो तो उस अवसर पर जहाज़ के यात्रियों को जो आनन्द मिलता है, वही सुख तुर्गनेव की रचनाओं में प्राप्त होता है। तुर्गनेव के ग्रन्थों को पढ़ना, मानो एक अत्यन्त सभ्य महापुरुष से वार्तालाप करना है। एक निपुण चित्रकार की भांति वह एक के बाद एक सुन्दर-से-सुन्दर चित्र खींचते जाते हैं और दर्शक उन्हें देखकर 'वाह ! वाह !' करने लगता

है। तुर्गनेव ने अपने समय के रूसी युवकों तथा युवतियों के मनोभावों का विश्लेषण बड़ी खूबी से किया है और उन्हें पढ़कर तत्कालीन रूसी जीवन का चित्र हृदयपटल पर खिंच जाता है। तुर्गनेव करुण रस के चित्रण में सिद्धहस्त थे और विषाद की एक हृदयवेधक रेखा उनकी सम्पूर्ण रचनाओं में चित्रित दीख पड़ती है। जनता हमारे ग्रन्थों को पढ़कर प्रसन्न होगी या नाराज़, यह खयाल तुर्गनेव के दिमाग में कभी नहीं आया और इसी कारण जो कुछ उन्होंने लिखा है, उसमें स्थायित्व है।

जब तुर्गनेव का उपन्यास 'पिता और पुत्र' (Fathers and Children) प्रकाशित हुआ था तो रूसी नवयुवक समाज में एक प्रकार की हलचल-सी मच गई थी। रूस में उस समय नवयुवकों का एक दल बन गया था, जो 'निहिलिस्ट' कहलाते थे। वे लोग दम्भ और पाखंड के विरोधी थे, 'बाबावाक्यं प्रमाणम्' की नीति के प्रति उन्होंने विद्रोह का झंडा खड़ा कर दिया था और झूठे शिष्टाचारों को तिलांजलि दे दी थी। दासत्व-शृंखलाओं को तोड़ डालने के लिए क्रान्ति के प्रारम्भ में उत्पन्न हुए नवयुवकों के हृदय में जो बेचैनी हुआ करती है, वही बेचैनी उन 'निहिलिस्टों' में थी। तुर्गनेव के उपन्यास 'पिता और पुत्र' में मुख्य नायक 'बेजेरोव' निहिलिस्ट का जो चित्र खींचा गया था, वह नवयुवकों को बहुत बुरा जंचा और उन्हें ऐसा प्रतीत हुआ कि मानों तुर्गनेव ने उनका मज़ाक उड़ाया है! इससे तुर्गनेव की लोक-प्रियता को बड़ा धक्का लगा। युवक-समाज हर जगह उनकी निन्दा करने लगा, पर तुर्गनेव एक सच्चे कलाकार की तरह अपने मत पर अटल रहे। उन्होंने कहा भी था—"बेजेरोव के चरित्र-चित्रण में मीठी-मीठी बातें कहकर मैं आसानी के साथ रूसी नवयुवकों को अपने पक्ष में ला सकता था, पर मैंने ऐसा करना अनुचित समझा।" तुर्गनेव के इस कार्य से हमें यही शिक्षा मिल सकती है कि सच्चे कलाकार को कभी—'जैसी बहै बैयार, पीठ तब तैसी दीजै' के सिद्धान्त का अनुकरण न करना चाहिए।

कलाकार की अटल श्रद्धा अपनी कला के प्रति ही होनी चाहिए। आज जो उसकी निन्दा करते हैं, कल वे ही उसकी प्रशंसा करने लगेंगे।

तुर्गनेव की रचनाओं पर उनके व्यक्तित्व की गहरी छाप है और ऐसा प्रतीत होता है कि जो कुछ उन्होंने लिखा है, वह गम्भीर अनुभव के बाद और अपने सुसंस्कृत हृदय से। कहीं उन्होंने लेक्चर झाड़ने का प्रयत्न नहीं किया, जैसा कि नवयुवक उपन्यास-लेखक प्रायः किया करते हैं और न कहीं उपदेशक बनने की चेष्टा की। यदि आप कुछ शिक्षा ग्रहण करना चाहते हैं तो उन चरित्रों से करें, जिनका वर्णन उपन्यासों में आया है। तुर्गनेव ने जिन पात्रों की रचना की है, उनके साथ उन्होंने वैसे ही प्रेम का और गम्भीरतापूर्ण बर्ताव किया है, जैसे कोई अपने पुत्र-पुत्रियों से करता है! क्या मजाल कि एक भी भद्दा शब्द उनके मुंह से निकल जाय! अपनी संस्कृति द्वारा तुर्गनेव संसार के बड़े-बड़े उपन्यास-लेखकों से भी आगे बढ़ जाते हैं।

यद्यपि तुर्गनेव के उपन्यास 'पिता और पुत्र' के कारण उनके और क्रान्तिकारी नवयुवकों के बीच में ग़लतफ़हमी की एक दीवार-सी खड़ी हो गई थी, पर तुर्गनेव के हृदय में अत्याचार के उन विरोधियों के प्रति सम्मान ही रहा। तुर्गनेव के जीवन के बहुत-से वर्ष स्वदेश से बाहर जर्मनी अथवा फ्रान्स में बीते और वहां उन्हें रूस से भागे हुए क्रान्तिकारियों से मिलने के काफी अवसर प्राप्त हुए। तुर्गनेव स्वयं खून-खच्चर के विरोधी थे, पर वे उन नवयुवकों के, जो अपनी जान हथेली पर लिये फिरते थे, साहस की प्रशंसा किये बिना नहीं रह सकते थे। जितने भी क्रान्तिकारी उन्हें मिल सके, उनसे वे अवश्य मिले थे। यही नहीं, वे रुपये-पैसे से उनकी मदद भी करते थे। कम-से-कम तीन साल तक उन्होंने जेनेवा से निकलनेवाले एक क्रान्तिकारी पत्र को पांचसौ फ्रांक की वार्षिक सहायता दी थी। जिस समय रूसी क्रान्तिकारी प्रिन्स क्रोपाटकिन जेल से भागकर यूरोप चले आये थे, उस समय तुर्गनेव ने एक प्रस्ताव किया था कि इस सुअवसर पर उन्हें एक भोज दिया जाय।

प्रिन्स क्रोपाटकिन ने अपने आत्म-चरित में लिखा है—"मेरे मित्र पी० एल० लैवरोफ से तुर्गनेव ने कहा, मुझे क्रोपाटकिन से मिलाओ। मेरे रूस के जेलखाने से सही-सलामत भाग निकलने के उपलक्ष में उन्होंने मुझे भोज भी दिया, जिसमें थोड़े-से मित्र एकत्र हुए थे। मैंने बड़ी श्रद्धापूर्वक तुर्गनेव के कमरे में पैर रक्खा, क्योंकि मैं उन्हें अपना पूज्य मानता था। उन्होंने अपनी पुस्तक 'शिकारी के भ्रमण-वृत्तान्त' द्वारा रूस की दासत्व-प्रथा के दोषों का भंडाफोड़ करके मातृभूमि की बड़ी सेवा की थी। रूसी स्त्रियों का चरित्र-चित्रण करने में तो उन्होंने कमाल कर दिखलाया है। रूसी स्त्री-समाज के हृदय और मस्तिष्क में कौन-कौन अद्भुत शक्तियां छिपी हुई हैं और वे पुरुषों को कितना अधिक प्रोत्साहित कर सकती हैं, यह बात उन्होंने अपने उपन्यासों में अच्छी तरह दरसा दी है। मुझपर और मेरे साथी सहस्रों ही रूसी नवयुवकों पर उनके उपन्यासों में वर्णित रूसी स्त्रियों के चरित्रों का जो बेहद प्रभाव पड़ा है, वह स्त्रियों के अधिकारों पर लिखे हुए अच्छे-से-अच्छे लेखों द्वारा भी नहीं पड़ सकता था।...एक बार तुर्गनेव ने मुझसे पूछा था—'तुम मिश्किन नामक अराजकवादी से परिचित हो? मैं उसके बारे में पूरा-पूरा हाल जानना चाहता हूं। वह एक आदमी था, जिसमें निराशावाद का नामोनिशान नहीं था।' मिश्किन पर रूसी सरकार ने सन् १८७८ में मुकदमा चलाया था। हमारे साथी अराजकवादियों में उसका व्यक्तित्व बड़ा जबरदस्त था। उन्नीसवीं शताब्दी के औपन्यासिकों में कला की दृष्टि से इतनी अधिक श्रेष्ठता किसीने प्रदर्शित नहीं की, जितनी तुर्गनेव ने। उनकी गद्य-रचनाएं हम रूसी आदमियों के लिए सुन्दर-से-सुन्दर संगीत की अपेक्षा भी अधिक मधुर तथा कर्णप्रिय हैं।"

कहा जाता है कि तुर्गनेव ने अपने पास उन रूसी क्रान्तिकारियों के चित्रों का संग्रह कर रखा था, जिन्हें ज़ार की सरकार ने फांसी पर लटका दिया था।

तुर्गनेव के जीवन में सबसे अधिक आकर्षक बात हमें उनकी साहित्य-सेवियों की सहायता करने की प्रवृत्ति प्रतीत होती है। कितने ही नवयुवक लेखकों को प्रोत्साहित करके उन्होने आदमी बना दिया। वह अपने साथी लेखकों की कीर्ति के लिए भरपूर प्रयत्न करते थे और कभी-कभी तो इस कारण उन्हें अपनी गांठ से भी बहुत कुछ खर्च करना पड़ता था। कभी किसी लेखक का विदेशी पुस्तक-प्रकाशकों से परिचय कराते थे, तो कभी किसी की पुस्तक की भूमिका लिखते थे। कभी अनुवाद करते थे और कभी मित्रों के किये हुए अनुवादों का संशोधन करते थे। अनेक ग्रन्थकारों को उन्होंने इस उम्मीद पर कि आगे चलकर उनकी पुस्तक बिकने पर हमारे रुपये वापस मिल जायंगे, बहुत-सा रुपया उधार दे दिया था। ग्रन्थकारों के साथ उनकी इतनी अधिक व्यापक सहानुभूति थी कि वे न केवल रूसी साहित्य-सेवियों की, अपितु फ्रेंच और जर्मन साहित्य-सेवियों की भी उसी निःस्वार्थ भाव से सहायता करते थे। यूरोप के भिन्न-भिन्न भाषाओं के लेखकों और भिन्न-भिन्न देशों के प्रकाशकों में वह एक प्रकार के अन्तर्राष्ट्रीय अवैतनिक दलाल बन गये थे। यही नहीं, बल्कि कभी-कभी तो अपनी गाँठ से पैसा खर्च करके वह यह काम किया करते थे! उनकी उस अनुपम सेवा का कारण यही था कि वह सच्चे साहित्य-प्रेमी थे, हृदय के उदार थे और ईर्ष्या तो उनके स्वभाव को छू तक नहीं गई थी। इसके सिवा एक बात और थी, वह यह कि उनके मुंह से किसीको 'ना' नहीं निकलती थी। फ्रेंच लेखक मोपासां को उन्होंने बहुत-कुछ सहायता दी थी। उन्होंने किसी फ्रेंच लेखक की फरांसीसी पुस्तक का अनुवाद रूसी भाषा में कराया और उसका स्वयं ही संशोधन किया। जब कोई रूसी प्रकाशक उस पुस्तक को छापने के लिए राजी न हुआ तो आपने ग्रन्थकार महोदय को अपने पास से एक हजार फ्रांक दे दिये। किसी-किसी लेखक को वह बड़े विचित्र ढंग से मदद देते थे। वह उनके लेख को किसी पत्र के पास भेजते और उस पत्र के सम्पादक को अपने पास से रुपये भी भेज देते कि ये लेखक महोदय को पत्र की ओर से पुरस्कार के रूप में भेज दिए

जायं ! एक फ्रेंच लेखक बड़े कष्ट में थे। आपने उनकी पुस्तक का अनुवाद रूसी भाषा में किया और जो कुछ रुपया पुरस्कार में मिला, उसे लेखक को दे दिया !

तुर्गनेव और टाल्सटाय के स्वभाव में बड़ा अन्तर था। तुर्गनेव के लिए सर्वोच्च वस्तु कला थी, टाल्सटाय के लिए जीवन-सुधार। महाकवि अकबर के शब्दों में—'सखुन उनसे सँवरता है, सखुन से मैं संवरता हूं" वाली बात थी। अपनी युवावस्था में टाल्सटाय का जीवन भी काफी असंयमी रहा था, पर पीछे उन्होने अपनेको बड़ी खूबी से सम्हाला। तुर्गनेव का जीवन सदा शाहाना ढंग का ही रहा। तुर्गनेव उम्र में टाल्सटाय से बड़े थे। युवावस्था में टाल्सटाय के जीवन पर भी तुर्गनेव की रचनाओं का काफी प्रभाव पड़ा था। खुद अपने लड़कों को टाल्सटाय ने यही सलाह दी थी कि तुम तुर्गनेव के उपन्यास पढ़ो, उनसे बढ़िया किसी दूसरी चीज़ की सिफ़ारिश मैं नहीं कर सकता। तुर्गनेव भी टाल्सटाय के बड़े प्रशंसक थे, पर इन दोनों के बीच मित्रता का सम्बन्ध स्थापित नहीं हो सका ! दूर से तो वे एक-दूसरे के प्रति प्रेम रखते थे, पर मुलाकात होते ही दोनों में झगड़ा हो जाता था ! इस झगड़े का कारण दोनों की प्रकृति की भिन्नता के सिवा टाल्सटाय का झक्कीपन भी था। युवावस्था में टाल्सटाय के स्वभाव में एक बड़ी त्रुटि यह थी कि वे बैठे-ठाले दूसरों से झगड़ा मोल लिया करते थे। टाल्सटाय तथा तुर्गनेव दोनों के जीवन-चरितों में इन झगड़ों का विस्तृत वृत्तान्त पाया जाता है; पर अन्त में दोनों में फिर मेल हो गया था। जब तुर्गनेव पेरिस में मृत्युशय्या पर पड़े हुए थे, टाल्सटाय ने उन्हें निम्न-लिखित पत्र भेजा था—

"आपकी बीमारी की खबर से मुझे बड़ी व्याकुलता हुई। जब मैंने सुना कि आपकी बीमारी भयंकर है तब मेरी समझ में यह बात आई कि आपके प्रति मेरी कितनी अधिक श्रद्धा है। यदि आपकी मृत्यु मेरे सामने हुई तो मुझे बड़ा ही दुःख होगा। शायद मैं ऐसी बातें अपनी

मानसिक बीमारी के कारण ही सोचता होऊं, या सम्भवतः वे डाक्टर ही, जो आपकी बीमारी को भयंकर बतलाते हैं, झूठ बोलते हों। परमात्मा करे कि हम लोग फिर एक-दूसरे से मिल सकें। जब पहले-पहल मैंने आपकी भयंकर बीमारी का वृत्तान्त सुना तो मैंने आपके पास पेरिस आने का विचार किया। आप स्वयं लिख सकें तो स्वयं, नहीं तो किसी दूसरे से ही अपनी बीमारी का पूरा-पूरा हाल लिखवा कर भेजें। मैं आप का अत्यन्त कृतज्ञ होऊंगा। प्यारे तुर्गनेव, मेरे पुराने मित्र, मैं यहां से तुम्हारा आलिंगन करता हूं।"

जब यह चिट्ठी तुर्गनेव के पास पहुंची, उस समय वह अत्यन्त निर्बल हो गये थे। बस, दिन गिन रहे थे। फिर भी उन्होंने कांपते हुए हाथ से पेन्सिल पकड़कर नीचे लिखी चिट्ठी टाल्सटाय को लिखी—

"प्यारे लिओ निकोलेविच,[1]

मैंने तुम्हें बहुत दिनों से कोई चिट्ठी नहीं भेजी, क्योंकि मैं बीमार रहा हूं और सच बात तो यह है कि मैं अपनी मृत्यु-शय्या पर लेटा हुआ हूं। अब मुझे आराम हो नहीं सकता, इसलिए इस बारे में खयाल करना ही फिजूल है। बस, मैं एक बात तुमसे कहना चाहता हूं, वह यह है कि मैं इस बात में अपना बड़ा सौभाग्य समझता हूं कि मैं तुम्हारा समकालीन रहा। आज मैं एक आखिरी प्रार्थना तुमसे करूंगा। मेरे मित्र, तुम अपने साहित्यिक कार्य को फिर हाथ में ले लो। तुम्हारी यह प्रतिभा उसी परमात्मा की देन है, जो संसार की सभी वस्तुओं का स्रोत है। यदि मुझे कोई यह विश्वास दिला सके कि मेरी प्रार्थना का तुमपर प्रभाव पड़ा तो न जाने मुझे कितनी अधिक प्रसन्नता होगी!

मैं तो अब खतम हो चुका! डाक्टरों को तो अबतक इस बात का भी पता नहीं लग सका कि मुझे बीमारी क्या है। न चल-फिर सकता हूं, न खा सकता हूं और न सो सकता हूं! इन बातों के लिखने में भी

---

[1] टाल्सटाय का नाम।

मुझे थकावट आती है। मेरे मित्र, रूस देश के महान् लेखक, तुम मेरी इस अन्तिम प्रार्थना को स्वीकार करो। इस चिट्ठी की पहुंच देना। आओ, आज एक बार फिर तुमसे, तुम्हारी पत्नी से और तुम्हारे घर-वालों से हृदय से लगाकर मिल लूं। अब नहीं लिख सकता! थक गया।"

रूस के दो सर्वश्रेष्ठ साहित्य-सेवियों के ये पत्र वास्तव में बड़े हृदय-वेधक है। सच्चे साहित्यिक ही इनके करुणरस का महत्व समझ सकते हैं।

तुर्गनेव स्वभाव के बड़े नरम थे। हुक्म चलाना तो वह जानते ही नहीं थे। एक बार बड़े जरूरी काम से उन्हें अपने एक मित्र के यहां जाने की आवश्यकता हुई। उन्होंने गाड़ीवान से कहा—"गाड़ी तैयार करो।" गाड़ी तैयार हुई। तुर्गनेव उसमें बैठ गये। थोड़ी दूर चलकर गाड़ी अकस्मात खड़ी हो गई! तुर्गनेव चक्कर में पड़े कि आखिर मामला क्या है? गाड़ी के भीतर से सिर निकाल कर देखा तो हजरत कोचवान गाड़ी के ऊपर बैठे हुए अपने एक साथी के साथ ताश खेल रहे हैं! तुर्गनेव ने यह दृश्य देखकर झट अपना सिर गाड़ी के भीतर कर लिया। ताश का खेल यथापूर्व चलता रहा। जब खेल खतम हुआ तब गाड़ी वहां से चली!

तुर्गनेव की रचनाओं में उनके कोमल हृदय की झलक स्पष्टतया दीख पड़ती है।

तुर्गनेव के स्वभाव में क्रियाशीलता की अपेक्षा करुणा-मिश्रित निराशा का प्राबल्य था। वह आराम-पसन्द विचारक थे, उच्चकोटि के कलाकार थे, पर कर्मयोगी नहीं। हां, कर्मयोगियों के लिए उनके हृदह में श्रद्धा अवश्य थी। किसी प्रकार की भी कट्टरता को वह बहुत नापसन्द करते थे। अलौकिक बातों में उनका विश्वास नहीं था। मनुष्यता में उनकी श्रद्धा थी और दूसरों की मानुषिक कमजोरियों के प्रति वे सहिष्णु थे। टाल्सटाय ने एक बार कहा था—

तुर्गनेव ने अपने ग्रन्थों में अपना हृदय खोलकर रख दिया है। उनके स्वभाव को समझने के लिए उनके ग्रन्थों का पढ़ना अत्यन्त आवश्यक है।

प्रिन्स क्रोपाटकिन लिखते हैं—"तुर्गनेव शरीर के लम्बे-चौड़े और कद के ऊंचे थे। सिर कोमल भूरे बालों से लदा रहता था और देखने में वे बड़े सुन्दर लगते थे। आंखों से बुद्धिमत्ता टपकती थी और उनमें कुछ हास्य की भी झलक प्रतीत होती थी। उनके रंग-ढंग में बनावट का नामोनिशान नहीं था। उनके विशाल मस्तिष्क से प्रतीत होता था कि उनकी दिमागी ताकत काफी विकसित हो चुकी है। उनकी मृत्यु के बाद उनका दिमाग तौला गया तो वह उन सब दिमागों से, जिनकी तौल तब-तक हो चुकी थी, इतना अधिक भारी निकला कि तौलनेवालों को अपनी तराजू पर ही आशंका होने लगी! उन्होंने फिर दूसरी तराजू पर उसे तोला, तब भी वह उतना ही यानी सबसे अधिक भारी निकला।"

तुर्गनेव के अन्तिम दिवस बड़े कष्टप्रद सिद्ध हुए। उनके कई मित्र उनसे पहले चल बसे थे। स्वयं उन्हें लम्बी बीमारी भुगतनी पड़ी। महीनों तक खाट पर पड़े रहकर मृत्यु की प्रतीक्षा करनी पड़ी, पर उन्होंने अपनी परोपकारिता और सहृदयता मरते दम तक न छोड़ी। जब उनके बचने की कोई उम्मीद नहीं थी, एक नवयुवक लेखक उनके पास पहुंचा। आपने उसी समय उसकी पुस्तक की सिफारिश में एक चिट्ठी किसी प्रकाशक को लिखा दी और कहा—"इस चिट्ठी के साथ अपनी किताब भेज दो, छप जायगी।"

तुर्गनेव की भयंकर बीमारी की खबरें पेरिस से रूस को बराबर जाती थीं और वहां के निवासियों के हृदय में उनके लिए बड़ी चिन्ता उत्पन्न हो गई थी।

सितम्बर सन् १८८३ में रूस का यह महान् लेखक इस दुनिया से विदा हो गया। संसार की भिन्न-भिन्न भाषाओं में अनेक उपन्यास-लेखक हुए हैं और होंगे, पर मानवी भावों का सूक्ष्म विश्लेषण करनेवाले प्रतिभाशाली औपन्यासिक बिरले ही होंगे। सच्चा कलाकार किसे कहते हैं और उपन्यास किस चीज का नाम है, यदि आप यह जानना चाहते हैं तो तुर्गनेव के ग्रन्थों को पढ़िये।

—बनारसीदास चतुर्वेदी

स्वाभिमानी

बुढ़ापा आ गया है, बीमार भी हूं और अब मेरे विचार अकसर मृत्यु की ओर ही जाया करते हैं, जो दिन-ब-दिन मेरे पास आ रही है। कदाचित् ही मैं भूतकाल के सम्बन्ध में सोचता हूं और शायद ही कभी मैंने अपनी आत्मा की आंखों से अपने अतीत के जीवन की ओर मुड़कर देखा है। सिर्फ, समय-समयपर, जाड़े में जब मैं दहकती आग के सामने निश्चल भाव से बैठता हूं, या गर्मी में जब छायादार वृक्षों की पंक्ति के नीचे धीर-गति से टहला करता हूं तब मुझे अतीतकाल के दिन, घटनाएं और परिचित चेहरे याद आ जाते हैं, किन्तु ऐसे समय में भी मेरे विचार मेरी जवानी या पकी उमर पर नहीं जाते, वे मुझे बचपन के प्रारम्भ की या छुटपन के शुरू के वर्षों की ही याद दिलाते हैं। मसलन मुझे उन दिनों की याद आ जाती है, जब मैं देहात में अपनी कठोर तथा क्रुद्ध दादी के साथ रहा करता था—उस समय मेरी उम्र सिर्फ बारह साल की थी—और मेरी कल्पना के आगे दो मूर्तियां आकर खड़ी हो जाती हैं।

किन्तु अब मैं अपनी कहानी का सिलसिले के साथ, ठीक-ठीक, वर्णन करूंगा।

: १ :

१८३०

बूढ़ा नौकर फिलिप्पिच दबे पांव, जैसी कि उसकी आदत थी, गले में रूमाल बांधे वहां पहुंचा। उसके होठ खूब कसकर दबे

हुए थे, जिससे उसकी सांस की गन्ध महसूस न हो और पेशानी के ठीक बीच में सफेद रंग के बालों का गुच्छा पड़ा हुआ था। उसने अन्दर दाखिल होकर सलाम किया और मेरी दादी के हाथ में एक लम्बी चिट्ठी रख दी, जिसपर मुहर लगी हुई थी। मेरी दादी ने चश्मा उठाया और उस पत्र को शुरू से आखिर तक पढ़ डाला।

"क्या वह यहां मौजूद है ?" मेरी दादी ने पूछा।

"जी, क्या फरमाया ?" फिलिप्पिच ने दबी जबान में डरते-डरते पूछा।

"बेहूदे कहीं के ! मैं पूछती हूं, जिस आदमी ने यह खत दिया है, क्या वह यहां मौजूद है ?"

"जी, वह यहीं है। दीवानखाने में बैठा हुआ है।"

मेरी दादी ने माला के दाने खड़खड़ाते हुए कहा, "उसे मेरे पास आने को कहो।" और फिर मेरी ओर मुखातिब होकर बोली "देखो, तुम यहीं चुपचाप बैठे रहना।"

मैं तो इस समय भी पहले की तरह ही एक कोने में तिपाई पर बिल्कुल चुपचाप बैठा हुआ था। मेरी दादी ने मुझपर पूरी तौर से रौब जमा रखा था।

पांच मिनट के बाद कमरे में पैंतीस वर्ष की उमर का एक सांवला आदमी दाखिल हुआ। उसके बाल काले थे, गाल की हड्डियां चौड़ी थीं, चेहरे पर चेचक के दाग़ थे, नाक कुछ तिरछी और भौंहें घनी थीं, जिनके अन्दर से उसकी भूरे रंग की छोटी-छोटी उदास आंखें दीख पड़ती थीं। उसकी आंखों का रंग और उनकी अभिव्यक्ति उसके चेहरे की पूर्वी ढंग की बनावट से मेल नहीं खाती थी। वह एक भद्र व्यक्ति की भांति लम्बा कोट पहने हुए था। आते-आते वह दरवाजे पर ठिठक गया और सिर

झुकाकर सलाम किया।

"तुम्हारा ही नाम बैबूरिन है ?" मेरी दादी ने पूछा, और फिर मन-ही-मन कहने लगीं—देखने में तो आरमेनियन जैसा मालूम पड़ता है।

"जीहां।" उस व्यक्ति ने गम्भीर और निश्चल स्वर में उत्तर दिया।

मेरी दादी के कंठ-स्वर की पहली कड़कती आवाज पर उसकी भौंहें कुछ कुंचित-सी हो गई। कहीं उसने यह आशा तो नहीं की थी कि मेरी दादी उसे अपनी बराबरी का समझकर सम्बोधन करेगी ?

"क्या तुम रूस के रहनेवाले हो और कट्टर धर्मावलम्बी हो ?"

"जी हां !"

मेरी दादी ने अपनी आंखों से चश्मा उतारकर बैबूरिन को सिर से पांव तक गौर से देखा। उस व्यक्ति ने अपनी निगाह नीची नहीं की, सिर्फ अपने हाथ उसने अपनी पीठ की तरफ मोड़ लिये। मेरा ध्यान खासकर उसकी दाढ़ी की ओर गया, जो खूब घुटी-मुड़ी थी। लेकिन उसके जैसे नीले गाल और ठोड़ी मैंने अपने जीवन में पहले कभी नहीं देखे थे।

"जेकोव पेट्रोविच ने", मेरी दादी बोलीं, "अपनी चिट्ठी में तुम्हारी जोरदार सिफारिश की है। लिखा है कि तुम बड़े गम्भीर और परिश्रमी आदमी हो, लेकिन यह तो कहो कि तुमने उसकी नौकरी क्यों छोड़ी ?"

"उनकी ? उन्हें अपनी ज़मीदारी के प्रबन्ध के लिए दूसरे ही ढंग के आदमी की ज़रूरत है।"

"दूसरे ढंग के आदमी की ! मतलब ?"

मेरी दादी फिर अपनी माला फेरने लगीं—"जेकोव पेट्रोविच लिखता है कि तुममें दो-दो विशेषताएं हैं। वे क्या हैं ?"

बेबूरिन ने अपने कन्धे को धीरे-से हिलाते हुए कहा, "मैं नहीं बता सकता कि मुझमें ऐसी कौन-सी बातें हैं, जिन्हें वह मेरी विशेषताएं कहना पसन्द करते हैं। शायद इसलिए कि मुझे... शारीरिक दण्ड असह्य है।"

मेरी दादी को यह सुनकर आश्चर्य हुआ, "क्या तुम्हारे कहने का अभिप्राय यह है कि जेकोव पेट्रोविच तुम्हें कोड़े मारना चाहता था ?"

बैबूरिन का काला चेहरा एकदम लाल हो आया, बोला, "श्रीमतीजी, आपने मेरे कहने का मतलब ठीक नहीं समझा। मैंने यह नियम बना लिया है कि मैं किसानों के साथ शारीरिक दण्ड का प्रयोग नहीं करूंगा।"

मेरी दादी ने पहले से भी अधिक आश्चर्य में आकर अपने हाथों को ऊपर की ओर फैला दिया और फिर वह अपने सिर को एक तरफ कुछ झुकाकर और एक बार फिर गौर से बैबूरिन को देखती हुई बोलीं, "अच्छा, तुम्हारा यह नियम है ! खैर, इससे हमें कोई सरोकार नहीं। हमें किसी ओवरसियर की जरूरत नहीं है। हमें तो चाहिए हिसाब रखने के लिए एक क्लर्क, सेक्रेटरी। तुम्हारी लिखावट कैसी है ?"

"जी, मैं अच्छी तरह लिख लेता हूं, हिज्जे में कोई ग़लती नहीं होती।"

"इससे मुझे कोई मतलब नहीं। मेरे लिए सबसे जरूरी बात यह है कि लिखना साफ होना चाहिए और नये ढंग के

पूछ लगे अक्षर नहीं होने चाहिए। मैं उन्हें पसन्द नहीं करती। तुम्हारी दूसरी विशेषता क्या है ?"

बैबूरिन कुछ अनमना-सा होकर खांसने लगा, फिर बोला, "शायद...उन महाशय का आशय इस बात से है कि मैं अकेला नहीं हूं।"

"तुम विवाहित हो ?"

"जी नहीं, यह बात नहीं है...लेकिन..."

मेरी दादी ने अपनी भौंहे कुछ टेढ़ी कर लीं।

"मेरे साथ एक व्यक्ति रहता है...वह पुरुष है...मेरा साथी, गरीब दोस्त। उससे मैं कभी अलग नहीं हुआ...वह दस बरस से साथ है।"

"वह तुम्हारा कोई सम्बन्धी है ?"

"जी नहीं, सम्बन्धी नहीं, दोस्त है। मेरे काम में उसका वजह से किसी प्रकार की बाधा पड़ने की सम्भावना नहीं है।"

बैबूरिन ने यह बात इस खयाल से कही कि कहीं मेरी दादी इस विषय में कोई आपत्ति न कर बैठें। फिर बोला, "वह मेरे खर्चे पर और मेरे साथ एक कमरे में ही रहता है। उससे बहुत-कुछ काम भी निकल सकता है, क्योंकि वह खूब पढ़ा-लिखा है...और यह सब मैं उसके बारे में शान मारने के लिए नहीं कह रहा हूं, असल में बात ऐसी ही है, और उसका चरित्र तो एकदम आदर्श है।"

मेरी दादी अपने होठों को चबाती हुई अधमुंदी आंखों से बैबूरिन की बातें सुनती रहीं, फिर बोलीं, "वह तुम्हारे खर्चे पर रहता है ?"

"जीहां।"

"तुम उसे अपनी दरियादिली के कारण रखते हो ?"

"जी नहीं, न्याय के कारण, क्योंकि एक गरीब आदमी का यह कर्तव्य है कि वह दूसरे गरीब की मदद करे।"

"सचमुच ! यह पहला मौका है, जब मैंने यह बात सुनी है। अबतक तो मेरा भी यही खयाल था कि यह काम अमीर आदमियों का है।"

"अगर धृष्टता न समझी जाय तो मैं कहूंगा कि अमीर आदमियों के लिए यह एक मनोरंजन का साधन है, किन्तु हमारे जैसे लोगों के लिए तो..."

"अच्छा-अच्छा, बहुत हो चुका, अब ज्यादा कहने की जरूरत नहीं।" मेरी दादी ने उसकी बात को बीच में ही काटकर कहा। फिर क्षणभर सोचने के बाद उन्होंने नाक के स्वर से, जो कुलक्षण समझा जाता था, पूछा, "तुम्हारे उस आश्रित की उमर क्या है ?"

"मेरी जितनी ही होगी।"

"ओह, मैंने तो यह अंदाज किया था कि वह कोई बच्चा होगा और तुम उसका पालन-पोषण कर रहे होगे।"

"जी नहीं, यह बात नहीं है ! वह मेरा साथी है और इसके सिवा..."

"अच्छा, इतना ही काफी है।" एक बार फिर मेरी दादी ने उसकी बातों को बीच में ही काटकर कहा, "तुम परोपकारी आदमी मालूम पड़ते हो। जेकोव पेट्रोविच का कहना दुरुस्त है कि तुम्हारी जैसी स्थिति के आदमी के लिए यह एक अजीब बात है। अच्छा, अब हम लोग काम की बातें करें। मैं तुम्हें समझाये देती हूं कि तुम्हें क्या-क्या करना होगा। तुम्हारी

मजदूरी की निस्बत...(मेरी दादी ने अपने सूखे पीले चहरे को एकाएक मेरी तरफ करके कहा) तुम यहां क्या कर रहे हो ? जाओ, अपनी पौराणिक कथाओं का पाठ याद करो।"

मैं उछल पड़ा और अपनी दादी के पास पहुंचकर उसका हाथ चूम लिया। फिर बाहर चला आया, पौराणिक कथाओं का अध्ययन करने के लिए नहीं, बल्कि बगीचे में सैर-सपाटे के लिए।

मेरी दादी की जमींदारी में एक बगीचा था, जो बहुत पुराना और बड़ा था। उसके एक तरफ पानी से लबालब तालाब था, जिसमें कई प्रकार की मछलियां बहुतायत से पाई जाती थीं। एक प्रकार की खास मछली भी उसमें थी, जो अब प्रायः लुप्त-सी हो गई है। इस तालाब के एक सिरे पर बेंत की एक घनी निकुंज थी। इससे कुछ दूर ऊंचे पर एक ढालू जमीन की दोनों तरफ़ नाना प्रकार के सघन वृक्ष थे, जिनके नीचे कई प्रकार के फूल फूले हुए थे। इधर-उधर झाड़ियों के बीच में छोटे-छोटे जमीन के टुकड़ों पर हरे रंग की मखमली घास जमी हुई थी और उसके बीच में तरह-तरह के कुकुरमुत्ते उग आये थे। वसन्तऋतु में यहां बुलबुलें गाती थीं, कोयल कुहू-कुहू करती थी और सारिकाओं का मोहक स्वर सुनाई पड़ता था। ग्रीष्म में यह स्थान हमेशा ठंडा रहा करता था और मैं जंगल और झाड़ियों के बीच अपने किसी प्यारे गुप्त स्थान में, जिन्हें मेरा खयाल था कि मैं ही जानता था, जाकर बैठ जाया करता था।

अपनी दादी के कमरे से बाहर निकलकर मैं सीधा इसी तरह के एक गुप्त स्थान की ओर, जिसका नाम मैंने 'स्विट्जरलैण्ड' रख छोड़ा गया था। किन्तु 'स्विट्जरलैण्ड' तक पहुंचने के पहले

ही मुझे अधसूखी टहनियों और हरी शाखाओं की कोमल जाली के अन्दर से यह देखकर बड़ा आश्चर्य हुआ कि मेरे सिवा और किसीने भी इस स्थान का पता पा लिया है। जिस स्थान को मैं सबसे अधिक पसन्द करता था, उसी स्थान पर मैंने एक ऊंचे कद के आदमी को एक लम्बा ढीला कोट और एक लम्बी टोपी पहने हुए खड़ा देखा। मैंने चुपके-से उसके पास जाकर उसके चेहरे पर निगाह डाली। उसका चेहरा, जो मेरे लिए बिल्कुल अजनबी था, बहुत लम्बा और कोमल मालूम पड़ता था। उसकी आंखें छोटी-छोटी और सुर्ख थीं। भोंड़ी नाक, मटर की फली-जैसी, उसके होठों तक लटक रही थी, जिसे देखते ही हँसी आये बिना नहीं रह सकती थी। उसके कांपते हुए होंठ गोल-से थे और उनसे तेज सीटी-जैसी आवाज निकल रही थी। वह अपने दोनों मजबूत हाथों की बड़ी-बड़ी अंगुलियों को अपनी छाती के ऊपरी हिस्से पर तेजी से फेर रहा था। रह-रहकर उसके हाथ की गति रुक जाती थी, होठों की सीटी-जैसी आवाज बन्द हो जाती थी और सर आगे की ओर झुक जाता था, मानों वह कुछ ध्यानपूर्वक सुन रहा हो। मैं उसके और भी पास आ गया और उसे पहले से भी अधिक ध्यान के साथ देखा। उस आगन्तुक के दोनों हाथों में एक-एक छोटा कटोरा था, जिसका व्यवहार लोग कनेरी चिड़ियों को हैरान करने और उनसे गाना गवाने के लिए किया करते हैं। मेरे पांव के नीचे दबकर एक टहनी टूट गई, जिससे वह आगन्तुक चौंक पड़ा। उसने अपनी धुंधली छोटी आंखों को झाड़ी की ओर फेरा और वह चल पड़ा। वह लड़खड़ाकर गिरना ही चाहता था कि एक वृक्ष से ठोकर खाकर रुक गया। उसके मुंह से चीख निकल पड़ी और वह चुपचाप खड़ा हो गया।

मैं झाड़ के अन्दर से निकलकर खुली जगह में चला आया। मुझे देखकर वह मुस्कराने लगा।

मैंने उसका अभिवादन किया।

उत्तर में उसने भी मुझे 'छोटेबाबू' कहकर मेरा अभिवादन किया।

'छोटेबाबू' कहकर इस प्रकार घनिष्ठतापूर्वक उसका सम्बोधन करना मुझे अच्छा नहीं लगा।

"तुम यहां क्या कर रहे हो ?" मैंने कठोर स्वर में उससे पूछा।

"मैं ? इधर देखो," उसने मुस्कराते हुए जवाब दिया, "मैं छोटी-छोटी चिड़ियों को गाने के लिए पुकार रहा हूं।" उसने मुझे अपने हाथ के छोटे कटोरे दिखलाये। "चैफिची चिड़िया मेरे बुलाने पर खूब बोलती है। तुम बच्चे हो, इसलिए जरूर ही गानेवाली चिड़ियों का गाना सुनकर खुश होते होगे। ध्यान देकर सुनो, मैं चिड़ियों की तरह चहचहाना शुरू करता हूं और वे फौरन उसके जवाब में चहचहाने लगेंगी। इसमें मुझे बड़ा मजा आता है।"

उसने अपने छोटे कटोरों को बजाना शुरू किया। इसके जवाब में पास के एक वृक्ष से एक चिड़िया सचमुच चहचहाने लगी। इसपर उस आगन्तुक ने मूक हँसी हँसते हुए मेरी ओर आंख का इशारा किया। उसकी हँसी, उसका वह इशारा, उसकी भाव-भंगिमा, उसकी कमजोर और हकलाती आवाज, उसके झुके हुए घुटने और दुबले-पतले हाथ, उसकी टोपी और लम्बा कोट, उसकी हरेक चीज से उसके भले स्वभाव का, उसकी निश्च्छलता तथा उसकी विनोदी वृत्ति का आभास मिलता था।

"क्या तुम यहां बहुत दिनों से हो ?" मैंने पूछा।

"नहीं, मैं आज ही आया हूं।"

"क्यों, क्या तुम वही आदमी तो नहीं हो, जिसके बारे में..."

"मि. बैबूरिन ने यहां उस महिला से जिक्र किया था। जी-हां, वही, वही।"

"तुम्हारे दोस्त का नाम बैबूरिन है। और तुम्हारा ?"

"मुझे पूनिन कहते हैं, पूनिन। वह बैबूरिन है और मैं पूनिन।" फिर उसने अपने छोटे-छोटे कटोरों को बजाना शुरू किया, "सुनो, ध्यान देकर चैफिंची का गाना सुनो। देखो तो वह किस तरह आनन्द का गीत गा रही है !"

उस अजीब आदमी ने मेरे हृदय को एकाएक अपनी ओर आकर्षित कर लिया। अन्य लड़कों की भांति मैं भी अपरिचित व्यक्तियों को देखकर या तो सहम जाता था, या अपनी शान-शौकत दिखलाने लगता था, किन्तु उस आदमी के साथ तो मुझे ऐसा मालूम पड़ने लगा, मानो मैं वर्षों से उसे जानता हूं।

मैंने उससे कहा, "आओ, मेरे साथ चलो। मैं इससे भी अच्छी एक जगह जानता हूं। वहां हम लोगों के बैठने के लिए एक स्थान है। वहां बैठकर हम बांध भी देख सकते हैं।"

"अच्छी बात है।" मेरे उस नवपरिचित मित्र ने अपनी सुरीली आवाज में जवाब दिया। मैंने उसे आगे-आगे चलने दिया। वह झूमता हुआ और सिर पीछे झुकाये हुए चलता रहा। मैंने उसके कोट की पीठ पर कालर के नीचे लटकता हुआ एक छोटा झब्बा देखा।

"यह क्या लटक रहा है ?" मैंने पूछा।

"कहां ?" उसने प्रश्न किया, और कालर पर अपना हाथ रखा। "ओह, झब्बे के बारे में तुम पूछते हो ? मैं समझता हूं कि शोभा के लिए यह वहां लगा दिया गया होगा। पर शायद यह ठीक तरह से लगाया हुआ नहीं है।"

बैठने के स्थान पर पहुंचकर हम लोग बैठ गये। वह भी मेरी बगल में बैठा। "यह स्थान बड़ा मनोहर है।" यह कहते हुए उसने एक गहरी सांस ली, "वाह, कैसी सुन्दर जगह है ! तुम्हारा यह बगीचा तो बहुत ही बढ़िया है। वाह-वाह !"

मैंने उसे एक तरफसे ध्यानपूर्वक देखा। "तुम्हारी यह टोपी तो अजीब ढंग की है।" इतना कहे बिना मैं नहीं रह सका। "जरा दिखाइये तो।"

"जरूर मेरे छोटे बाबू, लो, खूब अच्छी तरह देखो।" उसने अपनी टोपी उतार ली। मैं अपना हाथ फैलाये हुए था। मैंने अपनी आंखें उठाईं और वह खिलखिलाकर हँस पड़ा। पूनिन का सिर बिल्कुल गंजा था। उसकी ऊंची उठी खोपड़ी पर, जो चिकनी सफेद खाल से ढकी हुई थी, एक भी बाल नजर नहीं आता था।

उसने अपने हाथ को खोपड़ी पर फिराया और वह खुद भी हँसने लगा। हंसते समय ऐसा मालूम पड़ा, मानो वह किसी वस्तु को लील जाना चाहता हो। उसका मुंह खुला हुआ था, आंखें बन्द थीं और माथे पर तीन सलवटें पड़ी थीं, मानो तीन लहरें हों। आखिर वह बोला, "क्यों, मेरी यह खोपड़ी अंडे की शक्ल की-सी नहीं है ?"

"हां-हां, ठीक अंडे की शक्ल-जैसी !" मैंने बड़े उत्साह के साथ उसके कथन का समर्थन किया, "तुम्हारा ऐसा सिर बहुत दिनों

से है ?"

"हां, बहुत दिनों से। पर जब मेरे बाल थे, उन दिनों का क्या कहना ! बिल्कुल सुनहले ऊन जैसे। ठीक उसी तरह के, जिस तरह के बालों के लिए आरगोनेटस को पाताल की यात्रा करनी पड़ती थी।"

यद्यपि मेरी अवस्था सिर्फ बारह वर्ष की थी, तथापि पौराणिक कथाओं का मैंने अध्ययन किया था, इससे मैं आरगोनेटस के नाम से परिचित था। फटी-चिथड़ी पोशाक पहने हुए उस व्यक्ति के मुंह से आरगोनेटस का नाम सुनकर मुझे बड़ा आश्चर्य हुआ।

"मालूम होता है कि तुमने पौराणिक कथाएं पढ़ी हैं ?" मैंने उससे प्रश्न किया और उसकी टोपी को अपने हाथों में लेकर इधर-उधर मोड़कर देखने लगा।

"मैंने इस विषय का अध्ययन किया है, मेरे प्यारे छोटे बाबू ! मुझे अपने जीवन में हरेक बात के लिए काफी समय मिला है। किन्तु अब मेरी टोपी मुझे दे दो। यह मेरे सिर की नग्नता को बचाने के लिए है।"

उसने टोपी पहन ली और अपनी सफेद भौंहों को कुछ नीचे की ओर झुकाकर मुझसे मेरा और मेरे माता-पिता का परिचय पूछा।

"मैं उस महिला का नाती हूं, जो यहां की मालकिन है।" मैंने जवाब दिया, "मैं उसके साथ अकेला रहता हूं। मेरे मां-बाप मर चुके हैं !"

पूनिन ने सहानुभूतिपूर्वक कहा, "भगवान उनकी आत्मा को शान्ति दे। अच्छा, तो तुम बे-मां-बाप के एक अनाथ बालक हो और साथ ही वारिस भी हो। भले घर के जान पड़ते हो।

तुम्हारे नेत्रों में भलेपन की ज्योति जगमगा रही है और उसकी धारा भी बह रही है।" उसने अपनी अंगुलियों से उसकी आंखों की ओर इशारा किया—"अच्छा, यह तो बताओ कि तुम्हारी दादी से मेरे मित्र की बातें तय हो चुकी हैं? क्या उसे वह स्थान मिल गया है, जिसके लिए उसे वचन दिया गया था?"

"मैं नहीं जानता।"

पूनिन ने अपना गला साफ करते हुए कहा, "अहा, यदि थोड़े समय के लिए भी कोई इस स्थान को अपना निवास-स्थल बना सके! नहीं तो कहां-कहां भटकना पड़ेगा, और फिर भी शायद ही पैर रखने को कोई जगह मिले। जीवन में अशान्ति के भय निरन्तर लगे ही रहते हैं, आत्मा विभ्रान्त बनी रहती है।..."

"मुझे यह तो बताओ," मैं उसकी बात काटकर बीच में ही बोल उठा, "क्या तुम्हारा पेशा पादरी का है?"

पूनिन ने मेरी तरफ मुखातिब होकर अपनी पलकों को आधा मूंद लिया—"तुम्हारे इस सवाल पूछने का क्या कारण है, भले आदमी?"

"क्यों, तुम्हारे बातें करने का ढंग ऐसा है, जैसे कि पादरी लोग गिरजाघरों में बोला करते हैं।"

"क्योंकि मैं प्राचीन धार्मिक ग्रन्थों के वाक्यों और पदों का बातचीत में व्यवहार करता हूं? किन्तु इसपर तुम्हें चकित नहीं होना चाहिए। मैं यह मानता हूं कि साधारण बातचीत में इस प्रकार के वाक्यों का सदा प्रयोग नहीं होता, किन्तु जब कोई व्यक्ति बनावट से विह्वल होकर बातें करने लगता है, उस समय उसकी भाषा भी अधिकाधिक प्रांजल हो उठती है। तुम्हारे

जो अध्यापक तुम्हें रूसी भाषा पढ़ाते हैं, उन्होंने तो तुम्हें यह बात बतलाई होगी। क्या तुम्हें ऐसी बातें नहीं बतलाते ?"

"नहीं, वे मुझे ऐसी बातें नहीं बतलाते।" मैंने उत्तर दिया, "जब मैं देहात में रहता हूं, मेरे साथ कोई शिक्षक नहीं रहता। मास्को में मेरे बहुत-से शिक्षक हैं।"

"क्या तुम देहात में बहुत दिनों तक ठहरोगे ?"

"दो मास, इससे अधिक नहीं। दादी कहती है कि मैं देहात में रहकर बिगड़ रहा हूं, यद्यपि यहां भी मेरे ऊपर शासन करनेवाली एक अध्यापिका है।"

"वह अध्यापिका फरासीसी जाति की है ?"

"हां।"

पूनिन ने अपने कान के पीछे खुजलाते हुए कहा, "वह कोई मिस (कुमारी) है ?"

"हां, उसका नाम मिस फ्रीकेट है।"

एकाएक मुझे यह जान पड़ा कि मेरे जैसे बारह वर्ष के एक लड़के के लिए किसी शिक्षक के बजाय शासन करनेवाली अध्यापिका का होना, जैसी एक छोटी बालिका के लिए रहा करती है, कलंक की बात है !

"किन्तु मैं उसकी परवा नहीं करता।" मैंने घृणासूचक भाव में कहा, "मैं क्यों परवा करने लगा !"

पूनिन ने अपना सिर हिलाया। "ओह, तुम भले आदमी विदेशियों को बहुत चाहते हो। तुम लोग स्वदेशी बातों को छोड़कर विदेशी चीजों को चाहने लग गये हो। तुम्हारा दिल विदेशों से आनेवाली वस्तुओं की ओर लग गया है—"छांड़ि स्वदेशी वस्तु विदेशी प्रेम बढ़ायौ।"

"ओ हो, क्या तुम कविता में बातें कह रहे हो ?" मैंने पूछा।

"क्यों न करूं ? मैं बराबर इस तरह बातें कर सकता हूं, जितना तुम सुनना चाहो, क्योंकि स्वभावतः ही मेरे मुंह से छन्दबद्ध वाणी निकला करती है..."

इसी समय बगीचे में हम लोगों के पीछे से एक जोर की तेज सीटी की आवाज सुनाई पड़ी। मेरा वह नवपरिचित व्यक्ति जल्दी से बेंच पर से उठकर खड़ा हो गया।

"छोटे बाबू, सलाम। मेरा दोस्त मुझे बुलाता है...शायद कोई काम हो। अच्छा, सलाम, माफ करना..."

वह झाड़ियों में घुसकर गायब हो गया और मैं उसके बाद भी कुछ देर तक अपनी जगह पर बैठा रहा। मुझे कुछ चिन्ता-सी प्रतीत हुई और इसके साथ ही मेरे मन में कुछ आनन्ददायक भावना भी उदित हुई। मैंने इससे पहले और किसीके साथ इस रूपमें मुलाकात नही की थी और न इस तरह बातचीत ही की थी। इसके बाद क्रमशः मैं स्वप्न देखने लगा। फिर मुझे अपनी पौराणिक कथाओं की याद आ गई और मैं घर की ओर चल पड़ा।

घर पहुंचकर मुझे मालूम हुआ कि मेरी दादी ने बैबूरिन को रखने का प्रबन्ध कर लिया है। उसे नौकरों के रहने के स्थान में घुड़साल के सामनेवाला छोटा-सा कमरा दिया गया था। उसने उसी कमरे में अपने मित्र के साथ डेरा डाल दिया था।

दूसरे दिन प्रातःकाल चाय पी चुकने के बाद मैं मैडम फ्रीकेट से छुट्टी मांगे बिना ही नौकरों के निवासस्थान की ओर चल पड़ा। मैं उस विलक्षण मनुष्य के साथ एक बार फिर बातचीत

करना चाहता था, जिससे मैंने पिछले दिन मुलाकात की थी। दरवाजे को बिना खटखटाये ही, इसका खयाल भी कभी मुझे नहीं आ सकता था, सीधे कमरे में दाखिल हुआ। वहां मैंने पूनिन को, जिसकी मैं तलाश कर रहा था, न पाकर उसके अभिभावक परोपकारी बैबूरिन को पाया। वह खिड़की के सामने नंगे बदन खड़ा था। उसके दोनों पांव एक दूसरे से बहुत अलग थे। वह अपने सिर और गर्दन को एक लम्बे तौलिये से रगड़ रहा था।

"क्या चाहते हो?" उसने अपने हाथ को पहले की तरह ही ऊपर उठाये हुए और दोनों भौंहों को मरोड़ते हुए पूछा।

"मालूम होता है, पूनिन घर पर नहीं है?" मैंने बिना अपनी टोपी उतारे ही सहज स्वतन्त्र ढंग से पूछा।

"हां, मिस्टर पूनिन, निकैण्डर वेविलिच, इस समय घर पर नहीं हैं।" बैबूरिन ने सोच-समझकर उत्तर दिया, "किन्तु नौजवान, मैं तुमसे एक बात कहना चाहता हूं, बिना पूछे इस तरह दूसरे के कमरे में दाखिल होना ठीक नहीं है।"

मैं! नौजवान! इसका इतना दुस्साहस! मेरा चेहरा क्रोध से लाल हो उठा।

"तुम नहीं जानते कि मैं कौन हूं?" मैंने पहले के समान सहज ढंग से नहीं, बल्कि रौब दिखलाते हुए कहा, "मैं यहां की मालकिन का नाती हूं।"

"होगे, इससे क्या बनता-बिगड़ता है?" बैबूरिन ने फौरन जवाब दिया और फिर तौलिये से अपना बदन रगड़ने लगा। "भले ही तुम मालकिन के नाती हो, किन्तु फिर भी तुम्हें दूसरे के कमरे में आने का अधिकार नहीं है।"

"दूसरे लोगों के ? क्या मतलब ? यहां-वहां—सब जगह मेरा घर है।"

"नहीं, माफ कीजिये, यह घर मेरा है, क्योंकि यह कमरा मेरे काम के बदले में मुझे दिया गया है।"

"रहने दीजिये अपनी यह सीख।" मैंने बीच में ही उसकी बात काटकर कहा, "मैं अपना कर्तव्य तुमसे अच्छी तरह जानता हूं।"

"तुम्हें सिखलाने की जरूरत है।" वह फिर मेरे कथन के बीच में ही बोल उठा, "क्योंकि इस समय तुम्हारी वह अवस्था है जब तुम्हें...मैं अपना कर्तव्य जानता हूं, लेकिन मैं अपने अधिकारों को भी भली-भांति जानता हूं। और अगर तुम इसी ढंग से बातें करते रहे तो मुझे तुम्हें कमरे से बाहर निकल जाने के लिए कहना पड़ेगा।..."

मालूम नहीं, हम लोगों के इस विवाद का किस प्रकार अन्त हुआ होता, यदि उसी क्षण पूनिन लड़खड़ाता हुआ उस कमरे में प्रवेश न करता। शायद वह हम लोगों की मुखाकृति देखकर ही यह ताड़ गया कि हम दोनों के बीच कुछ मनमुटाव उत्पन्न हो गया है और वह फौरन अत्यन्त प्रसन्नताव्यंजक भावों को प्रकट करता हुआ मेरी ओर देखने लगा।

"अहा ! मेरे छोटे बाबू ! छोटे बाबू !" वह अपने हाथों को जोर से घुमाते हुए और निःशब्द हँसी हँसते हुए चिल्ला उठा, "आओ भाई ! छोटे बाबू ! मेरे यहां आये हो ? खूब आये ! आओ, प्यारे !"

मैंने विचार किया—उसके इस प्रकार बोलने का क्या मतलब हो सकता है ? क्या वह इस प्रकार बेतकुल्लफी के साथ, सुपरि-

चित आदमीकी तरह, मुझसे बातचीत कर सकता है ? वह कहता गया, "आओ, मेरे साथ बगीचे में आओ। मैंने वहां एक चीज़ देखी है...यहां इस बन्द जगह में, ठहरने से क्या फायदा ! चलो, हम दोनों चलें !"

मैं पूनिन के पीछे-पीछे हो लिया। दरवाजे पर पहुंचकर मैंने विचार किया कि एक बार मुंह फिराकर बैबूरिन की ओर अवज्ञासूचक दृष्टिपात कप देना अच्छा है, जिससे उसे यह मालूम हो जाय कि मैं उससे बिल्कुल नहीं डरता !

मेरे इस प्रकार देखने पर उसने भी उसका जवाब उसी ढंग से दिया और जान-बूझकर अपने तौलिए में छींका, जिसका उद्देश्य यह था कि मुझपर यह बात अच्छी तरह प्रकट हो जाय कि वह मुझे किस प्रकार पूर्ण घृणा की दृष्टि से देखता है।

ज्योंही दरवाजा हमारे पीछे बन्द हुआ, मैंने पूनिन से कहा—"तुम्हारा यह मित्र बड़ा ढीठ जान पड़ता है !"

भयभीत-सा होकर पूनिन ने अपने चौकन्ने चेहरे को मेरी ओर कर लिया।

"तुमने 'ढीठ' शब्द का प्रयोग किसके लिए किया है ?" उसने मुझसे पूछा।

"क्यों ? उस व्यक्ति के लिए...उसका नाम क्या है ? वह... बैबूरिन।"

"पारामन सेम्योनेविच ?"

"हां, वही...काले मुंहवाला।"

"अरे...अरे...अरे..." पूनिन ने प्यार से मुझे डांटा। "छोटे बाबू, तुम इस तरह बात क्यों करते हो ? बैबूरिन एक अत्यन्त योग्य और अपने सिद्धान्तों पर दृढ़ रहनेवाला असाधारण

पुरुष है। यह निश्चय जानो कि वह अपने प्रति किया हुआ अपमान सहन नहीं कर सकता, क्योंकि वह अपना महत्व भली-भांति जानता है। उसका ज्ञान-भंडार बहुत विस्तृत है और यह स्थान उसके उपयुक्त नहीं है। मेरे प्यारे, तुम्हें उसके साथ पूर्ण शिष्टता का व्यवहार करना चाहिए। क्या तुम जानते हो कि वह (इस समय पूनिन झुककर मेरे कान के पास आ गया) एक प्रजातन्त्रवादी है ?"

मैं पूनिन को घूरकर देखने लगा। मैंने इस बात की बिल्कुल आशा नहीं की थी। छोटी-छोटी पुस्तकों से तथा अन्य ऐतिहासिक ग्रन्थों से मुझे यह बात मालूम थी कि किसी ज़माने में प्राचीन काल में यूनान और रोम में प्रजातन्त्रवादी हुआ करते थे। किसी अज्ञात कारण से मैंने उन लोगों की जो तसवीर अपने मन में खींच रखी थी, उसमें वे लोहे की टोपी पहने, अपनी भुजाओं में गोल ढाल बांधे और बड़े-बड़े नंगे पांववाले जीव थे; किन्तु वास्तविक जीवन में, वर्तमान रूप में, और सो भी रूस में, अमुक प्रान्त में प्रजातन्त्रवादी पाये जाते हैं—इस ख्याल ने तो मेरी सारी भावनाओं को ही उलट दिया और मुझे सर्वथा विभ्रान्त बना डाला।

"हां, मेरे प्यारे, हां, बैबूरिन प्रजातन्त्रवादी है।" पूनिन ने अपनी पहली बात को फिर दुहराया, "अतः, अब आइन्दा तुम्हें खयाल रखना चाहिए कि उसके जैसे आदमी के साथ किस प्रकार बातें करना उचित है। अच्छा, अब हम लोग बगीचे में चलें। जरा खयाल तो करो कि मुझे वहां कौन-सी वस्तु मिली है ? कौवे के घोंसले में कोयल का अण्डा। कितनी अच्छी चीज़ है।"

मैं पूनिन के साथ बगीचे में गया, किन्तु मेरे मन में रह-रहकर वही बात आती थी—प्रजातन्त्रवादी ! प्रजा···तन्त्र···वादी !

आखिर मैंने यह निश्चय किया—"हो-न-हो, उस आदमी के इस प्रकार तुनकमिजाज होने का कारण यही है।"

उस दिन से पूनिन और बैबूरिन—इन दोनों आदमियों के प्रति मेरे रुख में एक निश्चित परिवर्तन हो गया। बैबूरिन के प्रति मेरे मन में बैर-भाव उत्पन्न हो गया, जिसके साथ-साथ कुछ समय बाद आदर-जैसा एक प्रकार का भाव भी मिल गया। और क्या सचमुच मुझे उसका भय नहीं लगता था? उसने शुरू में मेरे साथ रुखाई का जो बर्ताव किया था, वह बिल्कुल गायब हो जाने पर भी मैं निडर नहीं हुआ था। कहने की आवश्यकता नहीं कि पूनिन से मुझे कोई डर नहीं था। मैं उसका सम्मान भी नहीं करता था। मैं उसे एक मसखरा व्यक्ति समझता था; किन्तु मैं उसे पूर्ण अन्तःकरण से प्रेम करता था। उसके साथ घंटों बिता देना, उसकी कहानियों को ध्यानपूर्वक सुनना और उसके साथ अकेले रहना मेरे लिए वास्तविक आनन्द का विषय हो गया था। मेरी दादी को यह बात पसन्द नहीं थी कि मैं इस प्रकार निम्न-वर्ग के एक मनुष्य के साथ घनिष्ठतापूर्वक मिला-जुला करूं, पर जब कभी मुझे फुरसत मिलती, मैं दौड़कर अपने उस विलक्षण प्रसन्नचित्त, प्रेमी मित्र के पास पहुंच जाता था। फरासीसी अध्यापिका के चले जाने के बाद—जिसे मेरी दादी ने अपमानित करके मास्को वापस भेज दिया था, क्योंकि पड़ोस में आये हुए एक फौजी कप्तान के साथ वार्तालाप के प्रसंग में उसने हम लोगों के घर की शुष्कता की शिकायत करने की धृष्टता दिखलाई थी—हम दोनों का सम्मिलन और भी जल्दी-जल्दी होने लगा। एक बारह वर्ष के बालक के साथ देर-देर तक बातचीत करते रहने पर भी पूनिन उकताता नहीं था। ऐसा मालूम होता था कि वह खुद बातचीत

करने के लिए उत्कण्ठित रहता हो। वृक्षों के कुंज के नीचे सूखी चिकनी घास पर या तालाब के ऊपर नरकट के वृक्षों के बीच किनारे की सर्द बालूपर—जिनमें वृक्षोंकी गठीली जड़ें निकली हुई थीं और वे इस तरह आपस में गुंथी हुई थीं, मानों बड़ी-बड़ी काले रंग की नसें हों, या सांप हों या कोई जीव हों, जो ज़मीन के अन्दर से निकले हुए हों—सुरक्षित छाया में उसके साथ बैठकर न मालूम कितनी बार मैंने उसकी कहानियां सुनी थीं। पूनिन ने अपने जीवन की सारी कहानी, छोटी-से-छोटी बात तक मुझे सुनाई। उसने अपने समस्त सुख-दुःखों का वर्णन किया और सदैव मैंने उसके साथ अपनी सच्ची सहानुभूति प्रकट की। पूनिन का पिता पादरी का काम करता था। वह एक बहुत ही अच्छा आदमी था, किन्तु नशे में वह हद से ज्यादा कठोर बन जाता था।

पूनिन ने एक विद्यालय में शिक्षा प्राप्त की थी, पर वहां की ठुकाई को सहन करने में असमर्थ होकर और पादरी के पेशे की तरफ रुचि न होने के कारण वह साधारण गृहस्थी की तरह जीवन व्यतीत करने लगा, जिसके परिणामस्वरूप उसे सारी कठिनाइयां भुगतनी पड़ीं और आखिर वह आवारा बनकर इधर-उधर भटकने लगा। पूनिन अकसर मुझ से कहा करता था—"यदि मुझे अपने उपकारी पारामन सेम्योनेविच (वह बैबूरिन के सम्बन्ध में जब कुछ कहा करता था तो इसी नाम से) भेंट न हुई होती तो मैं कंगाली एवं पाप के दलदल में फंसे बिना न रहता।" बड़े-बड़े शब्दों और वाक्यों का प्रयोग करना पूनिन को बहुत पसंद था और उसकी प्रवृत्ति यदि मिथ्या कथन की ओर नहीं, तो औपन्यासिक रूप में कथा कहने या बढ़ा-

चढ़ा बात कहने की ओर अवश्य थी। वह प्रत्येक वस्तु को देखकर प्रफुल्लित हो जाता था और उसकी प्रशंसा करने लगता था। मैं भी उसका अनुकरण करते हुए किसी बात को बढ़ाकर कहने और उसपर प्रफुल्लित हो जाने का आदी हो गया था। "तुम कैसे भक्की आदमी हो गये हो! भगवान तुमपर दया करे!" मेरी बुड़ी धाय अक्सर मुझसे कहा करती थी। पूनिन की कहानियों को मैं बड़े चाव से सुना करता था, किन्तु उसकी कहानियों से भी बढ़कर मैं उसके साथ मिलकर पढ़ना पसन्द करता था।

सुयोग पाकर जब कभी वह एकाएक कहानी के किसी साधु-की तरह, या किसी सुन्दर परी की तरह, अपनी बांह के नीचे एक मोटी-सी बड़ी पुस्तक दबाये हुए मेरे सामने उपस्थित होता, और चुपके से अपनी लम्बी-टेढ़ी अंगुली का इशारा करते हुए, या रहस्यपूर्ण कटाक्ष करते हुए, वह अपने सिर से, अपनी भौंहों से, अपने कन्धोंसे, अपने सम्पूर्ण शरीरसे, बगीचेके घने-से-घने गुप्त स्थानकी ओर संकेत करता—जहां कोई भी आदमी हम दोनों के पीछे नहीं आ सकता था और जहां हमारा पता ढूंढ़ निकालना असम्भव था—उस समय मेरे मन में जो भावना उत्पन्न होती थी, उसका वर्णन करना असम्भव है। जब हम दोनों अलक्षित रूप में वहां से चल देते, जब हम अपने किसी गुप्तस्थल पर पहुंच जाते और एक-दूसरे के पास बैठे होते, उस समय जब धीरे-धीरे पुस्तक खोली जाती और उसके भीतर से एक तेज गन्ध निकलती, जो मुझे अनिर्वचनीय मधुर मालूम होती थी, उस समय मैं किस हर्षातिरेक से, किस मौन प्रतीक्षा से, पूनिन के चेहरे को, उसके होंठों को—जिन होठों से क्षण-भर में ही इतनी सरस धारा-प्रवाह वाणी निकलनेवाली थी, ताका करता था?

आखिर जब उसके पढ़ने के प्रथम शब्द मुझे सुनाई पड़ते उस समय मेरे चारों तरफ की वस्तुएं गायब हो जातीं। गायब नहीं हो जातीं, बल्कि यों कहिये कि दूर चली जातीं, धुंधले मेघों में प्रविष्ट हो जातीं और जो कुछ रह जाता, वह मैत्री की भावना मात्र थी। वे वृक्ष, उनकी वे हरी-हरी पत्तियां, वह ऊंची-ऊंची घास हमारे ऊपर पर्दा डाले हुए हैं, हमें शेष संसार की दृष्टि से अन्तर्हित किये हुए हैं, कोई नहीं जानता कि हम दोनों कहाँ हैं, क्या कर रहे हैं—इस समय हमारे साथ जो कुछ है, वह कविता है, हम इसी में सराबोर हैं, उसीके नशेमें मस्त हैं। हम इस समय किसी गम्भीर महान् रहस्यमय भावना का अनुभव कर रहे हैं।

पूनिन ने अपने लिए काव्य-विषय को चुन लिया था—ऐसा काव्य, जो संगीतमय एवं ध्वनिपूर्ण हो। वह काव्य के लिए अपने जीवन तक को उत्सर्ग कर देने को तैयार रहता था। वह कविता का पाठ ही नहीं करता था, बल्कि बड़ी शान के साथ छन्दों की व्याख्या भी करता था। उस समय ऐसा मालूम होता था, मानो उसके मुंह से ताल-लययुक्त वाणी का प्रवाह निकल रहा हो, उसकी नासिका से अजस्र वर्षण हो रहा हो, मानो कोई मदोन्मत्त मनुष्य आत्म-विस्मृत बनकर किसी अचिन्त्य प्रदेश में विचरण करने लगा हो और उस समय उसे अपने तन-मन की बिल्कुल सुध-बुध न रही हो।

उसकी एक आदत और थी, वह यह कि पहले वह छन्दों को धीरे-धीरे कोमल स्वर में पढ़ता, मानो वह खुद मन-ही-मन में पढ़ रहा हो। इस प्रकार पढ़ने की क्रिया को वह प्रथम पाठ बतलाता, फिर इसके बाद वह उसी छन्द को जोर से गरजकर पढ़ने लगता

और ऐसा करते हुए एकदम उछल पड़ता। उस समय उसके हाथ ऊपर की ओर उठ जाते और उसकी भाव-भंगिमा आधी विनम्र और आधी दर्पयुक्त-सी हो जाती। इस प्रकार हम लोग सिर्फ लोमोनोसव, सुमारोकोव और कैंटीमीर (कविताएं जितनी ही पुरानी होती थीं, पूनिन उतने ही चाव से उन्हें पढ़ा करता था) के काव्यों का ही पारायण नहीं कर गये, बल्कि हेरस्कोव के 'रोजिएड'को भी पढ़ डाला। सच बात यह है कि इस 'रोजिएड' को पढ़कर ही मेरा उत्साह बहुत उमड़ पड़ा था। अन्य पात्र-पात्रियों के अलावा इसमें एक शक्तिशालिनी तातार स्त्री का—एक विशालकाय नायिका का—चरित्र-चित्रण है। मैं अब उसका नाम तक भूल गया हूं, पर उन दिनों उसका नाम लेते ही मेरे हाथ-पांव सर्द हो जाते थे। "हां!" पूनिन बड़ी खूबी के साथ अपने सर को हिलाते हुए कहता, "हेरस्कोव के काव्यों को पढ़ते समय सहज ही उनसे छुटकारा पाना सम्भव नहीं है। मौके-मौके पर उनमें कोई-कोई ऐसी पंक्ति निकल आती है, जो हृदय को विदीर्ण किये बिना नहीं रहती। उसके काव्य को लगातार पढ़ते रहिये, तभी आप उसके मर्म को अच्छी तरह समझ सकते हैं। उसे पूरी तरह से हृदयंगम करने की कोशिश कीजिये, पर वह भागकर दूर हट जायगा। उसका नाम बहुत ठीक रखा गया है। 'हेरस्कोव' शब्द ही इस बात का सूचक है। "लोमोनोसव के काव्यों को पूनिन इसलिए दोषयुक्त समझता था कि उसकी शैली बहुत ही सरल एवं स्वतन्त्र है। डर्जहेविन के प्रति उसका भाव प्रायः शत्रुतापूर्ण था। उसके बारे में वह कहा करता था कि उसे कवि की अपेक्षा भाट कहना अधिक उपयुक्त है। हमारे घर में साहित्य एवं काव्य की ओर कुछ भी ध्यान नहीं दिया जाता

था। सिर्फ इतनी ही बात नहीं थी, बल्कि कविता और खासकर रूसी भाषा की कविता बिल्कुल गंवारू और खोटी समझी जाती थी। मेरी दादी तो इसे कविता न कहकर महज तुकबन्दी कहा करती थीं। वह कहती थीं कि इस प्रकार की तुकबन्दियों का प्रत्येक रचयिता या तो कोई पुराना पियक्कड़ होगा, या पक्का धूर्त। इस प्रकार की भावनाओं में पाले-पोसे गये मेरे जैसे बालक के लिए यह स्वाभाविक था कि था तो मैं पूनिन से ऊबकर उससे अलग हो जाऊं (वह बेढंगा और मैला-कुचैला रहा करता था, जो मेरे उच्चवंशोचित स्वभाव के सर्वथा विरुद्ध था) या फिर उसके द्वारा आकर्षित एवं मुग्ध होकर मैं उसका अनुकरण करने लगूं और उसके समान कविता-प्रेमी बन जाऊं... आखिर हुआ भी ऐसा ही। मैं भी कविता पढ़ने लग गया, या जैसा मेरी दादी कहा करती थीं, तुकबन्दियों में गर्क रहने लगा···मैंने छन्द-रचना की चेष्टा की और एक पद्य बना भी डाला, जिसमें एक बाजे का वर्णन किया गया था—

"मंजु मनोहर ढपली की तुम राग लेउ सुनि,
कैसी सुन्दर लगै तासु मंजीर-प्रतिध्वनि।"

मेरे इस प्रयत्न में जो एक प्रकार की अनुरणनात्मक लय थी, उसकी पूनिन ने सराहना की, किन्तु कविता के विषय को निम्न-कोटि का एवं संगीत के अयोग्य समझकर उसे नापसन्द किया।

हाय! हमारे वे सारे प्रयत्न, भावावेश एवं हर्षोल्लास, हमारा वह एकान्त पठन-पाठन, हमारा वह एकान्त जीवन, हमारी वह कविता—इन सबका अचानक अन्त हो गया! वज्राघात की तरह हमपर एकाएक विपत्ति टूट पड़ी!

मेरी दादी हरेक चीज में स्वच्छता एवं व्यवस्था पसन्द करती थीं, ठीक उसी तरह, जैसा उन दिनों क्रियाशील सेनापति किया करते थे। हमारे बगीचे में भी सफाई और व्यवस्था का होना जरूरी था, इसलिए समय-समय पर उसमें गरीब किसानों को—जिनके कोई परिवार नहीं था, न जमीन, न कोई अपना माल-मवेशी—और घरके नौकरों में उन आदमियों को, जो कृपा-पात्र नहीं रहे थे, या बुढ़ापे के कारण अयोग्य करार दे दिये गए थे, खदेड़कर लाया जाता था और उन्हें रास्तों को साफ करने, किनारे के घास-पात को उखाड़ने, क्यारियों में मिट्टी फोड़ने तथा इसी तरह के दूसरे कामों में लगा दिया जाता था। एक दिन जब ये सब काम हो रहे थे, मेरी दादी बगीचे में गईं, और अपने साथ मुझे भी लेती गईं। चारों ओर वृक्षों के बीच और सब्जियों के अगल-बगल हमें सफेद, लाल और नीले रंग के कुरते दीख पड़े। सभी तरफ हमें कुदालों से छीलने और उसके झनझनाने तथा तिरछी चलनियों में मिट्टी के ढेलों के गिरने की आवाज सुनाई पड़ी। मजदूरों के पास से होकर जब मेरी दादी गुजर रही थीं, उन्होंने अपनी तीक्ष्ण दृष्टि से फौरन देख लिया कि एक मजदूर औरों की अपेक्षा मन्द गति से काम कर रहा था और उसने किसी प्रकार की उत्सुकता प्रकट किये बिना ही मेरी दादी के सम्मानार्थ अपनी टोपी उतार ली। वह युवक अभी बिल्कुल नौजवान था, उसका चेहरा मुरझाया हुआ था, आंखें ज्योतिहीन और धंसी हुई थीं। उसका सूती कुरता बिल्कुल फटा हुआ था और इधर-उधर थिगरे लगे हुए थे। उसके दुबले कंधों पर कदाचित् ही वह कुरता बैठता था।

"वह कौन है ?" मेरी दादी ने फिलिप्पिच से, जो उनके

पीछे-पीछे उनके प्रश्न की बाट जोहता हुआ जा रहा था, पूछा।

"किसके...बारे में....हुजूर ने फरमाया ?" फिलिप्पिच रुक-रुककर बोला।

"अरे मूर्ख, मेरा मतलब उस आदमी से है, जो मेरी ओर उदास-भाव से देख रहा है। वह—जो सामने खड़ा है और काम नहीं कर रहा है।"

"वह ! जी···व···ह···वह पावेल का, जो अब मर चुका है, लड़का यरमिल है।"

पावेल अब से दस वर्ष पूर्व मेरी दादी के मकान में प्रधान खानसामा था। उसे मेरी दादी बहुत चाहती थीं, परन्तु अचानक वह उनकी नजर में गिर गया और उसे उस काम से हटाकर चरवाहे के काम पर रख दिया गया। किंतु वहां भी वह बहुत दिनों तक नहीं रह सका। उसका दिन-दिन पतन होता गया और वह कुछ समय तक दूर की एक छोटी झोंपड़ी में मुट्ठी-भर आटे-दाल पर अपनी गुजर करता रहा। आखिर लकवे की बीमारी से उसकी मृत्यु हो गई। वह अपने पीछे अपने परिवार को बिल्कुल दीन दशा में छोड़ गया।

"अच्छा !" मेरी दादी ने उसकी आलोचना करते हुए कहा, "यह साफ मालूम पड़ता है कि बेटा भी अपने बाप के गुणों पर जा रहा है। हमें इस आदमी के लिए भी कोई इन्तजाम करना होगा। मुझे ऐसे आदमी की जरूरत नहीं है।"

मेरी दादी लौटकर चली गईं और उन्होंने उस आदमी के लिए इंतजाम किया। तीन घंटे के बाद यरमिल पूरे साज-सामान के साथ मेरी दादी के कमरे की खिड़की के नीचे लाया गया। वह अभागा लड़का यहां से दूसरी कोठी पर भेजा जा

रहा था। जहां वह खड़ा था, वहां से कई कदम के फासले पर घेरे की दूसरी तरफ एक छोटी-सी गाड़ी उस गरीब के साज-सामान से लदी हुई खड़ी थी। वह जमाना ही ऐसा था। यरमिल नंगे सिर मुंह नीचा किये था, उसकी पीठ-पीछे एक डोरी से बंधे हुए उसके जते लटक रहे थे। उसका चेहरा महल की ओर था। उससे यह जाहिर नहीं होता था कि उसे किसी तरह की निराशा, शोक या घबराहट है। उसके सूखे होठों पर एक पागलों की-सी मुस्कराहट थी। वह अपने ज्योतिहीन अर्द्ध-निमीलित नेत्रों से पृथ्वी की ओर एकटक देख रहा था। मेरी दादी को उसकी उपस्थिति की सूचना दी गई। वह आराम-कुर्सी पर से उठीं और अपनी रेशमी साड़ी को धीरे-से फड़फड़ाती हुई पढ़ने के स्थान की खिड़की तक गईं, और नाक के अग्रभाग पर सोने की कमानीवाले दुहरे शीशे के चश्मे को रखते हुए उन्होंने उस नव-निर्वासित व्यक्ति की ओर दृष्टि डाली। उस समय उनके कमरे में और भी चार आदमी थे—खानसामा, बैबूरिन, दिन में मेरी दादी के पास रहनेवाला एक लड़का और मैं।

मेरी दादी ने अपने सिर को ऊपर-नीचे हिलाया।

"श्रीमती !" दबी जबान में एकाएक आवाज सुनाई पड़ी।

मैंने इधर-उधर दृष्टि डाली। बैबूरिन का चेहरा लाल—एकदम लाल—हो रहा था। उसकी लटकती हुई भौंहों के नीचे प्रकाश की छोटी-छोटी तीक्ष्ण रेखाएं दीख पड़ती थीं...इसमें कोई संदेह नहीं कि बैबूरिन ने ही 'श्रीमती' शब्द का उच्चारण किया था।

मेरी दादी ने भी अपनी नजर दौड़ाई और अपने चश्मे को

यरमिल से बैबूरिन की तरफ फिराया।

"यह कौन बोलता है?" उन्होंने धीरे-से नाक के स्वर बोलते हुए कहा। बैबूरिन खिसककर कुछ आगे आ गया।

"श्रीमती!" उसने कहना शुरू किया, "मैं ही वह व्यक्ति हूं...मैं...साहस.. मैं खयाल...मैं श्रीमती से साहसपूर्वक यह निवेदन करना चाहता हूं कि इस कार्रवाई में आप गलती कर रही हैं।"

"यानी?" मेरी दादी ने अपने चश्मे को आंख पर से हटाये बिना ही उसी स्वर में कहा।

"मैं यह कहना चाहता हूं..." बैबूरिन साफ-साफ प्रत्येक शब्द का यत्नपूर्वक उच्चारण करता हुआ बोला, "मैं उस लड़के के बारे में कह रहा हूं, जिसे बेकसूर दूसरी कोठी पर भेजा जा रहा है..। इस प्रकार के प्रबन्ध से...मैं साहस के साथ निवेदन करता हूं—असंतोष फैलता है, और—ईश्वर न करे...इसके अन्य परिणाम भी हो सकते हैं। इसके सिवा ऐसा करना बड़े-बड़े मालिकों को जो अधिकार दिये गए हैं, उनका दुरुपयोग करना है।"

"अच्छा जनाब, आप यह तो फरमाइये कि आपने तालीम कहां पाई है?" दादी ने कुछ समय तक मौन रहने के बाद पूछा और अपने चश्मे को नीचे उतारकर रख दिया।

बैबूरिन हतप्रभ-सा हो गया। "क्या फरमाया श्रीमती ने?" उसने बड़बड़ाते हुए कहा।

"मैं तुमसे पूछती हूं, तुमने कहां तालीम पाई है? तुम शब्द तो ऐसे विद्वत्तापूर्ण इस्तेमाल करते हो!"

"मैं...जी, मेरी शिक्षा..." बैबूरिन ने कहना शुरू किया। मेरा

दादी ने घृणासूचक भाव में अपने कंधे को हिलाया।

"मालूम होता है", उन्होंने बीच में ही बात काटकर कहा, "तुम्हें मेरा इंतजाम ठीक नहीं जंचता, पर इससे मुझे कोई सरोकार नहीं, क्योंकि अपनी रैयत के बीच मैं ही सर्वेसर्वा हूं, और उनके लिए किसी के सामने जवाबदेह नहीं। लोग मेरी बातों में दखल दें और मेरे कामों की मेरे सामने ही आलोचना करें, इसे सहन करने की मुझे आदत नहीं। मुझे अज्ञात कुलशील विद्वान् परोपकारी व्यक्तियों की जरूरत नहीं है। मैं ऐसा नौकर चाहती हूं, जो बिना किसी हीला-हुज्जत के मेरी मर्जी के मुताबिक काम करे। तुम्हारे यहां आने के पहले से मैं बराबर इसी तरह रहती आई हूं और तुम्हारे चले जाने के बाद भी इसी तरह रहूंगी। तुम मेरे लायक आदमी नहीं हो, इसलिए बर्खास्त किये जाते हो। निकोलाई स्टोनेव..." मेरी दादी ने कारिन्दा की ओर मुखातिब होकर कहा, "इस आदमीका वेतन चुका दो, जिससे यह आज खाने के वक्त से पहले ही यहां से रुखसत हो जाय। सुना न? मुझे गुस्सा मत दिलाओ। दूसरा आदमी भी...यानी वह मूर्ख, जो उसके साथ रहता है, उसे भी यहां से रवाना कर देना चाहिए। यरमिल यहां क्यों ठहरा हुआ है?" खिड़की के बाहर देखती हुई वह बोलीं--"मैंने उसे देख लिया है। अब और वह क्या चाहता है?" मेरी दादी ने खिड़की की तरफ अपने रूमाल को हिलाया, मानो वह किसी भिनभिनाती मक्खी को दूर भगाना चाहती हों। इसके बाद वह एक कुर्सी पर बैठ गईं और हम लोगों की तरफ देखकर रूखे स्वर में बोलीं--"इस कमरे के सब आदमी बाहर चले जायं!"

हम सब-के-सब उस कमरे से बाहर निकल आये, सिर्फ वह

लड़का नौकर रह गया, क्योंकि दादी की निगाह में वह तो कोई आदमी था ही नहीं।

मेरी दादी की आज्ञा का अक्षरशः पालन किया गया। कलेवे के पहले ही बैबूरिन और पूनिन दोनों वहां से विदा हो रहे थे। यहां मैं अपने शोक, अपनी अकृत्रिम, सच्ची बालोचित निराशा के भाव वर्णन करूंगा। मेरे मन में प्रजातन्त्रवादी बैबूरिन के इस साहसिक कार्य द्वारा रौबभरी प्रशंसा का जो प्रबल भाव उत्पन्न हुआ था, वह भी मेरे इस निराशा तथा खेद के भाव के सामने फीका पड़ गया। मेरी दादी के साथ बातचीत करने के बाद बैबूरिन फौरन अपने कमरे में चला गया और अपना असबाब बांधने लगा। यद्यपि मैं बराबर उसके आसपास चक्कर काटता रहा, या दरअसल पूनिन के चारों ओर चक्कर काटता रहा, किन्तु फिर भी बैबूरिन ने एक बार मेरी ओर देखने या एक शब्द भी बोलने की कृपा नहीं की। पूनिन भी बिल्कुल घबराया हुआ था और वह भी कुछ नहीं बोला, पर उसकी दृष्टि बराबर मेरी तरफ थी। उसकी आंखों में आंसू भरे हुए थे...वे न तो नीचे गिरते थे और न सूखने ही पाते थे। वह अपने संरक्षक के कार्य की आलोचना करने का साहस नहीं कर सकता था—उसकी दृष्टि में बैबूरिन कोई गलती कर ही नहीं सकता था—किन्तु दुःख एवं निराशा का क्या कहना! पूनिन और मैंने 'रोजिएड' काव्य से अन्तिम बार कुछ पढ़ने की चेष्टा की। हम दोनों ने गोदाम में अपने को बन्द कर लिया—बगीचे में जाने का स्वप्न देखना तो व्यर्थ था—किन्तु एक पंक्ति भी पढ़ नहीं पाये कि दोनों फूट-फूटकर रोने लगे। मेरी तो हिचकी बंध गई, यद्यपि उस समय मेरी अवस्था बारह वर्ष की थी और मैं वयस्क होने का दावा

करता था !

गाड़ी में बैठने के बाद बैबूरिन आखिर मेरी तरफ मुखातिब हुआ और अपने चेहरे की स्वाभाविक कठोरता को कुछ मुलायम करके बोला, "हे भद्र युवक, तुम्हारे लिए इसमें एक नसीहत है। इस घटना को याद रखना और बड़े होने पर इस प्रकार के अन्याय-पूर्ण कार्य को बन्द करने की कोशिश करना। तुम्हारा हृदय अच्छा है, तुम्हारा स्वभाव अभी दूषित नहीं हुआ है...खबरदार, सावधान हो जाओ। इस तरह की बातें बहुत दिन नहीं चल सकतीं।"

उस समय, जब मेरे नेत्रों से अश्रु प्रवाहित होकर मेरी नाक, होंठ और ठुड्डी को भिगो रहे थे, मैंने लड़खड़ाते स्वर में कहा, "मैं याद रखूंगा", मैंने वादा किया, "मैं करूंगा—निश्चय करूंगा।"

किन्तु इसी समय पूनिन, जिसका मैंने इससे पहले बीसियों बार आलिंगन किया था (मेरे कपोल उसकी बढ़ी हुई डाढ़ी के संसर्ग से जल रहे थे और उसके शरीर की गन्ध भी मेरे शरीर में व्याप गई थी) एकाएक पागल जैसा हो गया। वह गाड़ी पर अपनी जगह से उछल पड़ा और दोनों हाथों को ऊपर उठाकर बहुत ही ऊंचे स्वर में निम्नलिखित भजन का पाठ करने लगा—

"हे अखिलेश ! दीनजन रक्षक, सुनो हमारी टेर,
अत्याचारी बढ़े जगत में, करो न अब तुम देर।
आर्त्त स्वर से पीड़ित जनता तुमको रही पुकार।"

बैबूरिन ने कहा, "बैठ जाओ, बैठ जाओ !"

पूनिन बैठ गया, पर फिर भी वह कहता ही रहा,

"दुष्ट लोग करते ही जाते नितप्रति अत्याचार ;

निरपराध दुःखित जीवों का कौन करे उद्धार ?"

'दुष्ट' शब्द का प्रयोग करते समय पूनिन ने मेरी दादी के महल की ओर इशारा किया और फिर गाड़ी हांकनेवाले की पीठ में उंगली लगाता हुआ बोला—

"आकर शीघ्र यहां उन दासों के बन्धन दो काट ;
ये अज्ञानी पीड़ित जन हैं इन्हें न सूझे बाट।"

इसी समय मेरी दादी का कारिन्दा निकोलाई ऐंटोनोव महल से बाहर निकला और उसने बड़े जोर-से चिल्लाकर गाड़ीवानसे कहा—"चलो-चलो, भागो यहां से ! उल्लू कहीं का ! अभी तक क्यों ठहरा हुआ है ?"

गाड़ी चल दी, पर दूर से अब भी यह ध्वनि सुनाई पड़ रही थी—

"हे जगदीश ! न्याय करने को आओ यहां तुरन्त ;
अन्यायी दल के अत्याचारों का करने अन्त।
अधिक कहां तक कहे ! हमारी यही प्रार्थना आज ;
अखिल विश्व-मानव-समाज पर तेरा ही हो राज।"

निकोलाई ऐंटोनोवने कहा, "कैसा गंवार है !"

छोटे पादरी ने, जो उस समय मालकिन से यह दर्याफ्त करने आया था कि मालकिन साहिबा को रात की प्रार्थना के लिए कौन-सा समय उपयुक्त होगा, कहा, "मालूम होता कि लड़कपन में इसकी पीठपर डण्डे अच्छी तरह नहीं पड़े।"

उसी दिन मुझे यह मालूम हुआ कि यरमिल अभी तक गांव में ही है और कुछ कानूनी कार्रवाई करने के लिए दूसरे दिन सुबह से पहले शहर नहीं भेजा जायगा। इन कानूनी विधियों का अभिप्राय तो यह था कि मालिकों की स्वेच्छाचारितापूर्ण

कार्रवाइयों पर नियन्त्रण रखा जाय, पर उल्टे इससे उनकी निगरानी करनेवालोंको कुछ ऊपरी आमदनी हो जाया करती थी। मैंने यरमिलको ढूंढ़ निकाला और उसके पास पहुंचकर उसके हाथ में एक पुलिन्दा रख दिया, जिसमें मैंने दो जेबी-रूमाल, एक जोड़ा स्लीपर-जूता, एक कंघी, एक पुराना रात में पहननेका चोगा और एक बिल्कुल नया रेशमी गुलूबन्द बांध दिया था। रुपये-पैसे तो मेरे पास कुछ थे नहीं, जो उसे दे देता। यरमिल को मुझे सोते से जगाना पड़ा। वह गाड़ी के पास पीछे के आंगन में पुआल के ढेरपर लेटा हुआ था। उसने मेरे उपहार को उदासीन भाव से, थोड़ी हिचकिचाहट के साथ, स्वीकार किया; पर उसने मुझे धन्यवाद भी नहीं दिया और फौरन अपने सिर को पुआल में छिपाकर फिर सो गया। मैं कुछ निराश-सा होकर घर लौटा। मैंने सोचा था कि वह मेरे आगमन पर विस्मित एवं प्रफुल्लित हो उठेगा और मेरे इस उपहारको भविष्य के लिए मेरे उदार संकल्पों की प्रतिज्ञाके रूप में देखेगा, किन्तु इस सबकी जगह...

"आप चाहे जो कुछ कहें...किन्तु इन लोगों में सहृदयता का अभाव है।" घर जाते हुए मेरे मन में यही विचार उठ रहा था।

मेरी दादी ने, किसी कारणवश, मुझे उस दिन बिल्कुल निश्चिन्त छोड़ दिया था। रात में खाना खा चुकने के बाद, जब मैं उसे नमस्कार करने आया तो उसने मेरी ओर सन्दिग्ध दृष्टि से देखा, फिर फरासीसी भाषा में कहा, "तुम्हारी आंखें सुर्ख मालूम होती हैं और तुम्हारे शरीर से किसानों की झोपड़ी की गन्ध आ रही है। तुम जो कुछ सोच रहे हो और

कर रहे हो, उसकी मैं जांच-पड़ताल नहीं करूंगी। मैं तुम्हें दण्ड देने के लिए अपनेको मजबूर नहीं करना चाहती, किन्तु मुझे आशा है कि तुम अपनी सारी मूर्खता को छोड़ दोगे और एक बार फिर कुलीन घर के लड़के की तरह आचरण करने लगोगे। खैर, हम लोग शीघ्र मास्को वापस लौट रहे हैं। मैं वहां तुम्हारे लिए एक शिक्षक नियुक्त कर दूंगी; क्योंकि मैं देखती हूं कि तुम्हें ठीक रास्ते पर लाने के लिए एक शक्तिशाली पुरुष की जरूरत है। अच्छा, इस समय जा सकते हो।"

इसके बाद दरअसल जल्दी ही हम लोग मास्को लौट गये।

: २ :

१८३७

सात साल बीत गये। उस समय हम लोग पहले के समान ही मास्को में रहते थे। किन्तु अब मैं एफ० ए० की दूसरी साल का विद्यार्थी था और मेरी दादी की, जो गत कई वर्षों से प्रत्यक्षरूप में वृद्धा जान पड़ने लगी थीं, हुकूमत का भार मेरे ऊपर अब पहले-जैसा नहीं रह गया था। मेरे जितने साथी छात्र थे, उनमें टारहोव नामक एक सुशील एवं प्रसन्न-हृदय नवयुवक था, जिसके साथ मेरी घनिष्ठता हो गई थी। हम दोनों के स्वभाव और रुचि में समानता थी। टारहोव कविता-प्रेमी था और स्वयं भी कविताएं लिखा करता था। मेरे हृदय-क्षेत्र में पूनिन ने कविता के जो बीज बोये थे, वे निष्फल नहीं गये। जैसा कि नवयुवकों में—जो आपस में दिली-दोस्त होते हैं—बहुधा हुआ करता है, हम दोनों में कोई बात ऐसी नहीं थी, जो गुप्त हो। किन्तु आश्चर्य तो मुझे तब हुआ, जब मैंने टारहोव में कुछ दिनों

तक लगातार एक प्रकार की उत्तेजना और विक्षोभ का भाव देखा। एक दिन वह घंटों के लिए गायब हो गया और मुझे यह भी नहीं मालूम हुआ कि वह गया कहां। इस तरह की घटना इससे पहले कभी नहीं हुई थी। मैं, एक मित्रके नाते, उससे इसकी पूरी कैफियत मांगने जा रहा था, पर मेरे इस भाव को वह पहले ही ताड़ गया।

एक दिन मैं उसके कमरे में बैठा हुआ था। वह अचानक आ गया और आनन्दपूर्वक सकुचाते हुए तथा मेरे चेहरे की ओर देखते हुए बोला, "मैं अपनी कवितादेवी से तुम्हारा परिचय कराऊंगा।"

"तुम्हारी कवितादेवी ? किस अजीब ढंग से तुम बातें करते हो ? प्राचीन पंडितों की तरह। तुम्हारी कविता ?" मैंने इस ढंग से कहा, मानो मुझे इस विषय में कुछ भी पता न हो। "क्या तुमने कोई नई कविता लिखी है या और कुछ ?"

"तुम नहीं समझते कि मेरे कहने का आशय क्या है।" टारहोव ने अपने पूर्व कथन को दुहराते हुए कहा। अबतक वह हँस ही रहा था और सकुचाया हुआ भी था। "मैं एक सजीव कविता से तुम्हारा परिचय कराऊंगा।"

"अ-हा-हा ! अब आई समझ में ! यह बात ! किन्तु वह तुम्हारी कैसे हुई ?"

"क्यों···चूंकि, अच्छा भाई, चुप ! मालूम होता है, देवीजी यहीं आ रही हैं।"

तेजी से चलती हुई पैरों की धीमी आवाज सुनाई पड़ी, दरवाजा खुला, और वहां अठारह वर्ष की एक बालिका आ उपस्थित हुई। वह छींट का एक सूती चोगा पहने हुई थी।

कन्धे पर एक काला कपड़ा पड़ा हुआ था और उसके सुन्दर घुंघराले बालों पर काले रंग की घास की टोपी शोभा पा रही थी। मुझे देखकर वह कुछ डर-सी गई, घबराई और पीछे की ओर लौटना ही चाहती थी कि टारहोव फौरन दौड़कर उससे मिलने के लिए आगे बढ़ा।

"ओ देवीजी, कृपया भीतर पधारिये। यह मेरे एक बड़े दोस्त हैं, बड़े अच्छे आदमी हैं, बड़े विचारवान हैं। तुम इनसे डरो मत।" फिर मेरी ओर मुखाबित होकर उसने कहा, "आओ, तुम्हारा मैं अपनी मानसी से—मूसा पेवलोवना विनोग्राडोवसे—परिचय कराऊं। आप मेरी एक बड़ी मित्र हैं।"

मैंने सिर झुकाकर उसका अभिवादन किया।

"आपका यह नाम...मानसी...?" मैंने कहना शुरू ही किया था कि टारहोव हँस पड़ा और बोला, "अहा! तुम नहीं जानते कि पत्रे में यह नाम भी पाया जाता है! मैं भी उस वक्त तक नहीं जानता था जबतक इस युवती के साथ मेरी मुलाकात नहीं हुई। मानसी? कितना मोहक नाम है। और यह नाम इनको फबता भी खूब है।"

मैंने फिर अपने साथी के मित्र का अभिवादन किया। वह दरवाजे से हटकर दो कदम आगे आई और चुपचाप खड़ी हो गई। उसका रूप बड़ा आकर्षक था, किन्तु मैं टारहोव के मत से सहमत नहीं हो सका और मन-ही-मन सोचने लगा, "यह तो एक अजीब ढंग की कविता है।"

उसके गुलाबी चेहरे से सुकुमारता टपक रही थी और उसके अंग-प्रत्यंग से नवयौवन की उमंग फूटी पड़ती थी। पर कविता के सम्बन्ध में, कवितादेवी के मूर्तिमान स्वरूप के संबंध में, मेरी—

और मेरी ही क्यों, उस समय के सब युवकों की—धारणा कुछ और ही थी। पहली बात तो यह थी कि कविता-कामिनी का कृष्णकेशी और पीतमुखी होना आवश्यक था। घृणाव्यंजक अहंकार की अभिव्यक्ति, तीक्ष्ण हास्य, उत्प्रेरित करनेवाले कटाक्ष और एक प्रकार की रहस्यमयी पैशाचिक अदृष्टपूर्ण 'वस्तु'—ये बातें बायरन-शैली की कविता-कामिनी के लिए आवश्यक थीं। उस बालिका के मुखमंडल पर इस प्रकार का कोई भी भाव दिखाई नहीं देता था। यदि मैं कुछ और वयस्क और अनुभवी होता तो शायद मैं उसकी उन आंखों की ओर विशेष ध्यान देता, जो छोटी-छोटी होने पर भी सुगठित पलकों से भरी हुई, सुलेमानी पत्थर जैसी काली, चंचल एवं ज्योतिपूर्ण थीं। भूरे बालवाली स्त्रियों में इस तरह की आंखें कदाचित ही देखी जाती हैं।

उसके उन लाल लोचनों के मायावी कटाक्षों में, जिनसे एक व्यग्र आत्माके—इतनी व्यग्र कि वह आत्म-विस्मरण की अवस्था को प्राप्त हो चुकी थीं—लक्षण व्यक्त होते थे, संभव है कि मुझे कवित्वमयी प्रवृत्तियों का आभास न मिलता, पर उस समय मेरी उम्र बहुत कम थी। मैंने मानसी की ओर अपना हाथ बढ़ाया, किन्तु उसने अपना हाथ मेरी ओर नहीं बढ़ाया। उसने मेरी इस क्रिया को देखा ही नहीं। वह उस कुरसी पर बैठ गई, जिसे टारहोव ने उसके लिए वहां रख दिया था, लेकिन उसने अपनी टोपी और कंधे पर का कपड़ा नीचे नहीं उतारा।

वह देखने में कुछ बेचैन-सी मालूम पड़ती थी। मेरी उपस्थिति ने तो उसे और भी व्यग्र बना दिया था। वह रह-रहकर इस प्रकार गहरी सांस लेती थी, मानो हांफ रही हो।

"व्लाडीमीर निकोलेच, मैं तुम्हारे पास सिर्फ एक मिनट के

लिए आई हूं," वह बोली। उसका कंठस्वर कोमल एवं गम्भीर था, जो उसके बालोचित रक्त अधरों से कुछ विस्मयजनक-सा प्रतीत होता था, "क्योंकि मेरी मां मुझे आध घंटे से अधिक बाहर नहीं रहने देती। अभी परसों तुम अच्छे नहीं थे...इसलिए मैंने सोचा..."

इतना कहकर वह रुक गई और अपने सिर को नीचा कर लिया। उसकी घनी झुकी भौंहों के नीचे उसकी काली-काली आंखें इस प्रकार आगे-पीछे हो रही थीं, मानो वे छलपूर्वक तीर चला रही हों, जिस तरह मछलियां पानी में सट-से इधर-से-उधर चली जाती हैं।

"मानसी! आपने बड़ी कृपा की!" टारहोव ने जोर से कहा, "किन्तु थोड़ा तो और ठहरिये। अभी-अभी चाय आई जाती है।"

"नहीं, यह असंभव है। मुझे अभी एक मिनट में यहां से चल देना है।"

"फिर भी थोड़ी देर सांस तो ले ही लीजिये। अभीतक आप जोर-जोर से हांफ रही हैं...और थकी भी तो हैं।"

"मैं थकी नहीं हूं। नहीं···ऐसी बात नहीं...सिर्फ...मुझे दूसरी किताब दो। मैंने इसे खतम कर डाला।" उसने अपनी जेब से मास्को-संस्करण की एक फटी हुई-सी मटमैली किताब निकाली।

"दूसरी किताब जरूर लीजिये, पर यह तो बताइये कि क्या आपको यह किताब पसंद आई?"

टारहोव ने मुझे संबोधित करते हुए कहा, "रोसलालेव नामक पुस्तक का जिक्र है।"

मानसीने कहा, "हां, किन्तु मेरे विचार से 'यूरी मिलोस्लेवेस्की' इसकी अपेक्षा कहीं अच्छा है। मेरी मां पुस्तकों के संबंध में बहुत कठोर हैं। वह कहा करती हैं कि पुस्तकों से हमारे काम में बाधा पड़ती है, क्योंकि उसके खयाल से...

"किन्तु मैं कहता हूं कि 'यूरी मिलोस्लेवेस्की' की रचना पुश्किन के 'जिप्सी के' समान नहीं है ? है न मानसी ?"

"नहीं, सचमुच ? जिप्सी..." उसने धीरे-धीरे गुनगुनाकर कहा, "हां, एक बात और है, ब्लाडीमीर निकोलेच, कल आप मत आइये...आप जानते ही हैं कि कहां ?"

"क्यों ?"

"यह असंभव है।"

"असंभव क्यों ?"

उस बालिका ने अपने कन्धे को सिकोड़ लिया और एकाएक मानों उसे अचानक धक्का लगा हो, वह कुरसी पर से उठ खड़ी हुई।

"क्यों, मानसी देवी !" टारहोव ने करुण स्वर में कहा, "कुछ देर तो और ठहरो।"

"नहीं, मैं ठहर नहीं सकती।" वह जल्दी-से दरवाजे के पास गई और दरवाजा खोलने की मूठको पकड़ा।

"अच्छा, कम-से-कम किताब तो लेती जाओ।"

"फिर कभी आऊंगी।"

टारहोव दौड़कर उस बालिका की ओर गया, किन्तु उस समय तक वह तीर की तरह कमरे से बाहर निकल गई थी। टारहोव की नाक दरवाजे से टकराती-टकराती बची। "क्या अजीब लड़की है ! यह तो सर्पिणी जैसी है।" उसने कुछ खिन्न-सा होकर

कहा और फिर चिन्ता-मग्न हो गया। मैं टारहोव के यहां ही ठहरा रहा। इन सब घटनाओं का मैं रहस्य जानना चाहता था। टारहोव भी किसी बात को गुप्त रखना नहीं चाहता था। उसने मुझे बताया कि वह बालिका कपड़े सीने का काम करती है। उसने पहले-पहल उसे तीन सप्ताह पूर्व एक सजी हुई दुकान पर देखा था। उस दुकान पर टारहोव अपनी बहन के लिए, जो दूसरे प्रान्त में रहा करती थी, एक टोपी खरीदने गया था। उस बालिका को प्रथम बार देखकर ही टारहोव उसके प्रति प्रेमासक्त हो गया। दूसरे दिन वह उससे बातचीत करने में सफल हुआ और ऐसा मालूम होता था कि वह बालिका भी उसे कुछ-कुछ चाहने लगी है।

टारहोव आवेश के साथ बोला, "किन्तु इतने से ही कुछ न मान बैठना। उसके प्रति कोई बुरा भाव मन में न लाना। अब-तक हम दोनों के बीच किसी प्रकार की कोई बात नहीं हुई है।"

"बुरा भाव !" मैंने उसकी बात को बीच में ही काटकर कहा, "मुझे इस विषय में कोई सन्देह नहीं है और मुझे इस बात में भी शक नहीं है कि तुम हृदय से इस बात पर खेद प्रकट करते हो ! किन्तु धीरज रखो, सब बातें अपने-आप ठीक हो जायंगी।"

"मैं भी ऐसी ही आशा करता हूं।" टारहोव ने हँसते हुए बड़-बड़ाकर कहा। "किन्तु सचमुच वह लड़की...मैं तुमसे सच कहता हूं...वह एक निराले ही ढंग की है। तुम्हें उसे अच्छी तरह देखने का मौका नहीं मिला। वह लज्जाशीला है !...अहा ! इतनी लज्जा-शीला ! उसकी इच्छाशक्ति कितनी प्रबल है ! किन्तु उसके इस लज्जा-भावपर हो तो मैं मुग्ध हूं। यह स्वतन्त्रता का लक्षण है।

अजी, मैं तो बिल्कुल उसके प्रेम में डूबा हुआ हूं !"

टारहोव अपनी उस 'जादूगरनी' के सम्बन्ध में चर्चा करने लगा और 'मेरी कवितादेवी' शीर्षक एक कविता का प्रारम्भिक भाग भी उसने मुझे पढ़ सुनाया। उसके उमंगपूर्ण हृदयोच्छवास मुझे उतने अच्छे नहीं लगे। मैं गुप्तरूप से उसके प्रति ईर्ष्यान्वित हो गया और शीघ्र वहां से चला आया।

कई दिनों के बाद मैं मास्को के एक बाजार में होकर गुजर रहा था। उस दिन शनिवार था। झुण्ड-के-झुण्ड लोग खरीद-फरोख्त कर रहे थे। चारों ओर लोगों की धक्का-मुक्की के बीच दूकानदार जोर-जोर से पुकारकर ग्राहकों को सौदा करने के लिए कह रहे थे। जो कुछ मुझे खरीदना था, खरीदकर मैं जल्दी-से-जल्दी उन दूकानदारों की तंग करनेवाली मिन्नतों से छुटकारा पाने की सोच रहा था कि इतने में मैं आप-ही-आप रुक गया—फलों की एक दूकान पर मैंने अपने दोस्तकी जादूगरनी मानसी-को देखा। वह मेरी बगल की ओर खड़ी थी और ऐसा मालूम होता था, मानो किसीकी प्रतीक्षा कर रही हो। कुछ क्षणों की हिचकिचाहट के बाद मैंने उसके पास जाकर उससे बातचीत करने का निश्चय किया ; किन्तु मैं दूकान के दरवाजे से होकर भीतर गया भी नहीं था और न अपनी टोपी उतारी थी कि इतने में वह उदास-सी होकर पीछे की ओर मुड़ी और जल्दी-से एक बूढ़े आदमी की ओर, जो ऊनी लबादा ओढ़े हुए था, घूम गई। उस समय उस बूढ़े को दूकानदार एक पौंड किशमिश तौलकर दे रहा था। उस लड़की ने बूढ़े की बांह पकड़ ली, मानो वह भागकर उसकी शरण में गई हो। उस बूढ़े ने पीछे की ओर मुड़कर उसे देखा। देखते ही मेरे आश्चर्य का ठिकाना न रहा। अरे !

यह तो मेरा पूर्वपरिचित पूनिन है !

हां, वह जरूर पूनिन था। अब भी उसके वही ज्योतिर्मय नेत्र, मोटे अधर, कोमल नीचे की ओर झुकी हुई नाक—सबकुछ तो वही थे। इन सात वर्षों के अन्दर उसमें बहुत कम परिवर्तन हुआ था। सम्भव है, उसका चेहरा कुछ शिथिल पड़ गया हो।

"निकेंडर वेवीलिच !" मैं चिल्ला उठा, "क्या तुम मुझे नहीं पहचानते ?"

पूनिन चौंक उठा और मुंह फैलाकर मेरी ओर ताकने लगा...

"मैं आपको नहीं पहचानता," यह कहना उसने शुरू किया ही था कि वह एकाएक तीक्ष्ण स्वर में चीख उठा, "ट्राटस्की के छोटे बाबू ! (मेरी दादी की जायदाद ट्राटस्की नाम से मशहूर थी) क्या आप ट्राटस्की के छोटे बाबू तो नहीं हैं ?"

किशमिश उसके हाथ से नीचे गिर पड़ीं।

"हां, मैं ही हूं !" मैंने उत्तर दिया और किशमिश को जमीन से उठाकर उसे चूम लिया।

आनन्द एवं उत्तेजना से अभिभूत वह बेदम-सा हो रहा था। मालूम पड़ता था कि वह रो देगा। उसने अपनी टोपी उतार ली, जिससे मुझे अच्छी तरह मालूम हो गया कि उसके अंडाकार सफेद सिर में बाल के चिन्हमात्र भी शेष नहीं रह गये हैं। उसने अपनी टोपी से रूमाल निकालकर नाक साफ की। किशमिश के साथ उस टोपी को उसने अपनी छाती में लटकाकर रखा। फिर उस टोपी को पहन लिया और किशमिश फिर उसके हाथ से नीचे गिर पड़ीं !

मैं नहीं कह सकता कि इतने समय में मानसी क्या कर रही थी, क्योंकि मैंने उसकी ओर देखने की चेष्टा ही नहीं की थी। मैं नहीं समझता कि पूनिन के इस आवेश का कारण मेरे प्रति अतिशय स्नेह था। इसका कारण यही था कि उसका स्वभाव किसी साधारण-से-साधारण अप्रत्याशित घटना का आघात सहन नहीं कर सकता था। गरीबों का स्वभाव ही यह हुआ करता है कि उनके मस्तिष्क जल्दी उत्तेजित हो जाते हैं।

"मेरे प्यारे लड़के, आओ, हमारे घर चलो।" उसने कम्पित स्वर में कहा, "तुम हमारी दीन कुटिया में आने में अपनी हेठी तो नहीं समझोगे ? अच्छा, तुम तो अभी विद्यार्थी ही हो..."

"हेठी की क्या बात है ! मुझे तो इससे सचमुच बड़ी प्रसन्नता होगी।"

"अब तो तुम स्वतन्त्र हो ?"

"बिल्कुल।"

"वाह भाई, खूब ! पारामन सेमोनिच को यह जानकर कितनी खुशी होगी ! आज वह और दिनों से पहले घर आवेगा और घर की मालकिन इस लड़की को भी शनिवार को छुट्टी दे देती हैं। हां, क्षमा करो, मैं तो अपनेको बिल्कुल भूल ही रहा था। तुम हमारी भतीजी को तो न जानते होगे ?"

मैंने फौरन उत्तर दिया कि अबतक मुझे उसे जानने का सौभाग्य प्राप्त नहीं हुआ है।

"ठीक-ठीक ! तुम उसे किस तरह जान सकते हो ! मानसी... महाशय, इस बालिका का नाम मानसी है। यह उसका दुलार का नाम नहीं है, बल्कि असली नाम है...मानसी, मैं तुम्हारा मिस्टर...से परिचय कराना चाहता हूं...।"

मैंने अपना नाम झट-से बतला दिया।

पूनिन ने मेरा नाम दोहराया, "मानसी, ध्यान देकर सुना, तुम जिस व्यक्ति को अपने सामने देखती हो, वह बहुत ही अच्छा खुशदिल नवयुवक है। भाग्यवश हम दोनों का उस समय संयोग हुआ था, जब ये छोटे थे। तुम इन्हें अपना मित्र समझो।"

मैंने झुककर अभिवादन किया। मानसी का मुखमंडल बिल्कुल फूल-जैसा लाल हो उठा। उसने अपनी पलकों के नीचे ही मेरी ओर कटाक्षपात किया और फिर फौरन उन पलकों को गिरा दिया।

"आह!" मैंने मन में सोचा, "तुम उन लड़कियों में से एक हो, जो कठिनाई की घड़ियों में भय से पीली नहीं पड़तीं, बल्कि और भी निखर उठती हैं, यह बात खासकर ध्यान देने योग्य है।"

"तुम्हें इसपर जरा मेहरबान होना चाहिए, यह बहुत सभ्य बालिका नहीं है।" पूनिन ने कहा और वह दूकान के बाहर सड़क पर चला गया। मानसी और मैं दोनों उसके पीछे-पीछे हो लिये।

जिस मकान में पूनिन रहता था, वह बाजार से बहुत दूर पर था। रास्ते में मेरे भूतपूर्व काव्य-गुरु को अपने रहन-सहन के सम्बन्ध में बहुत-कुछ बातें मुझसे करने का समय मिल गया था। हम लोगों की जुदाई के बाद से पूनिन और बैबूरिन दोनों रूस में इधर-उधर मारे-मारे-फिरते रहे और अभी एक वर्ष से अधिक नहीं हुआ था, जबकि उन्हें मास्को में एक स्थायी निवास-स्थान मिला था। बैबूरिन एक धनी सौदागर और व्यवसायी के दफ्तर में हेड क्लर्क हो गया था। "कुछ तरक्की की गुंजायश तो यहां है नहीं।" पूनिन ने गहरी सांस लेते हुए कहा, "काम बहुत है और

पारिश्रमिक थोड़ा...पर किया क्या जाय ? इतना भी मिल गया, यही शुक्र है। मैं भी इस बात की कोशिश कर रहा हूं कि कापी नकल करके और दूसरों को कुछ पढ़ा-पढ़ कर कुछ पैदा कर लिया करूं, पर अभी तक मेरे प्रयत्न सफल नहीं हुए। मेरी लिखावट, शायद तुम्हें याद होगा, पुराने ढंग की है, जो आजकल की रुचि के प्रतिकूल है। रही ट्यूशन की बात, सो सबसे बड़ी बाधा ठीक-ठीक पोशाक का अभाव है। इसके सिवा मुझे इस बात का भी बहुत डर है कि मैं शिक्षा देने में—रूसी साहित्य के विषय में—आधुनिक रुचि के अनुकूल हूं और इसलिए मैं निकाल दिया जाता हूं।" पूनिन ने हँसी रोकने की चेष्टा की, पर उसे कुछ हँसी आ ही गई। उसमें पहले-जैसी पुरानी और कुछ-कुछ धारा-प्रवाह वाणी तथा बोलते-बोलते कविता कर बैठने की दुर्बलता अब भी बनी हुई थी। थोड़ा रुककर उसने कहा, "सब लोग नई बातों की ओर दौड़ा करते हैं—नवीनता के सिवा और कुछ चाहते ही नहीं। **'नई नवेलिनि छांड़ि भला को लखे पुरानी !'** मैं तो यहांतक कहूंगा कि तुम भी प्राचीन देवताओं के उपासक नहीं होगे और नवीन मूर्तियों के सामने श्रद्धा से नतमस्तक हो जाते होगे ?"

"अच्छा, निकेंडर वेवीलिच, यह तो बतलाओ कि क्या अब भी तुम सचमुच हेरास्कोव की रचनाओं की कद्र करते हो ?"

पूनिन शान्त भाव से खड़ा रहा और फिर उसने अपने दोनों हाथों को फौरन हिलाते हुए कहा, "मैं बहुत ज्यादा उसकी कद्र करता हूं, जनाब ! जी हां, पहले से भी कहीं ज्यादा।"

"तुम पुश्किन की रचनाओं को तो नहीं पढ़ते होगे ? तुम्हें पुश्किन भला क्यों अच्छा लगने लगा !" पूनिन फिर अपने हाथों को सिर से ऊपर उठाकर बोला।

"पुश्किन ? पुश्किन एक सांप की तरह है, जो घास के अन्दर छिपा रहता है और जिसका स्वर बुलबुल-जैसा मीठा है।"

जब हम दोनों इस तरह बातें करते हुए मास्को शहर की सड़क पर से होकर जा रहे थे, मानसी हमारी बगल में, कुछ दूर हटकर, धीरे-धीरे चल रही थी। पूनिन से उसके विषय में चर्चा करते हुए मैं उसे 'आपकी भतीजी' नाम से सम्बोधित कर रहा था। पूनिन कुछ देर तक चुप रहा, फिर सिर खुजलाते हुए उसने दबी जबान में बतलाया, "मैं इसे योंही शिष्टाचार में 'भतीजी' कहा करता हूं, वास्तव में मानसी से मेरा कोई सम्बन्ध नहीं है। बैबूरिन को यह एक अनाथ बालिका के रूप में वोरोनेज शहर में मिली थी और उसीने इसे पाल-पोसकर बड़ा किया है। मैं इसे अपनी लड़की भी कह सकता हूं, क्योंकि मैं इसे अपनी सगी लड़की से कम प्यार नहीं करता।"

मुझे इसमें जरा भी शक नहीं था कि यद्यपि पूनिन ने जान-बूझकर दबी जबान में ये बातें कही थीं, लेकिन फिर भी मानसी ने उसकी सारी बातों को सुन लिया। यह सब सुनकर तत्काल वह क्रुद्ध, लज्जित एवं हतप्रभ-सी हो गई। उसके चेहरे पर बारी-बारी से इन भावों की रेखाएं दौड़ गईं और उसके पलक, भौंह, होंठ और नथुने कुछ-कुछ कांपने-से लग गये। उसकी यह भाव-भंगिमा बड़ी ही मनोहर, आनन्ददायक एवं विलक्षण जान पड़ती थी।

आखिर हम लोग उस 'दीन कुटिया' में पहुंचे और सचमुच वह कुटिया दीन ही थी। वह एक छोटा-सा इकतल्ला मकान था, जो ऐसा मालूम पड़ता था, मानो जमीन में धंसा जा रहा

हो। उसकी छत लकड़ी की ओर झुकी हुई थी तथा सामने के हिस्से में चार तंग खिड़कियां थीं। कमरों का सामान बिल्कुल गरीबी के ढंग का था और वह साफ-सुथरा भी न था। खिड़कियों के बीच दीवारों पर लगभग एक दर्जन छोटे-छोटे काठ के पिंजड़े लटक रहे थे, जिनमें लार्क, कैनारी और सिस्किन पक्षी बन्द थे।

"मेरे अध्ययन के विषय!" पूनिन ने उन पक्षियों की ओर अंगुली से इशारा करते हुए विजयोल्लास-सूचक स्वर में कहा। हम लोग मुश्किल से घर के भीतर गये होंगे और इधर-उधर देख भी नहीं पाये थे और पूनिन ने मानसी को चाय का प्याला लाने के लिए अभी भेजा ही था कि इतने में बैबूरिन खुद वहां पहुंच गया। वह मुझे पूनिन से भी वृद्ध मालूम हुआ, यद्यपि उसकी चाल-ढाल में अब भी पहले-जैसी ही दृढ़ता थी और उसके मुख-मंडल की अभिव्यक्ति में कोई परिवर्तन नहीं हुआ था, पर इतने समय में वह दुबला-पतला हो गया था और झुक गया था। उसके गालों में गढ़े पड़ गये थे और घने काले केशों में कहीं-कहीं सफेदी भी आ गई थी। उसने मुझे पहचाना भी नहीं और जब पूनिन ने मेरा नाम बताया तो उसने कोई विशेष प्रसन्नता का भाव भी प्रकट नहीं किया। वह अपनी आंखों से मुस्कराया भी नहीं, सिर्फ अपना सिर हिला दिया। उसने मुझसे रूखे स्वर में लापरवाही के साथ पूछा—"क्या तुम्हारी दादी जीवित है?" बस, इतनी बात के सिवा वह और कुछ नहीं बोला। "मैं किसी रईस के आने पर विशेष प्रसन्न नहीं होता।" उसके चेहरे से यही भाव टपकता था, मानो वह कह रहा था—"मैं इसे अपना सौभाग्य नहीं समझता।" सो प्रजातन्त्रवादी बैबूरिन इस समय

भी वही प्रजातन्त्रवादी बना हुआ था।

मानसी वापस आई और उसके साथ-साथ एक नाटी-सी दुर्बल वृद्धा भी वहां आई, जिसके हाथ में एक दाग पड़ा हुआ पुराना चाय का प्याला था। पूनिन इधर-उधर दौड़-धूप करने लगा और मुझसे खाने के लिए आग्रह करने लगा। बैबूरिन मेज़-के पास बैठा गया और अपने सिर को हाथों के सहारे कर लिया। वह थकी-मांदी आंखों से इधर-उधर देखने लगा, किन्तु चाय पीने के समय उसने बातचीत करना शुरू कर दिया। वह अपनी वर्तमान स्थिति से असन्तुष्ट था। वह अपने मालिक को मनुष्य नहीं, एक 'रक्त-शोषक जीव' के रूप में समझता था। "निम्न श्रेणी के कर्मचारी उसके लिए कूड़े-करकट के सिवा और कुछ हैं ही नहीं। उसकी दृष्टि में उनकी कोई हस्ती ही नहीं, हालांकि वह खुद कुछ समय पहले इसी श्रेणी के बन्धन में बंधा था। क्रूरता एवं लोलुपता के सिवा वह और कुछ जानता ही नहीं। यह परवशता सरकार की परवशता से भी बुरी है। यहां के सारे व्यापार ठगी पर चलते हैं और एकमात्र इसीके सहारे वे फूलते-फलते हैं।"—इस प्रकार की निराशाजनक उक्तियों को सुनकर पूनिन ने प्रत्यक्ष रूप में गहरी सांस ली और अपनी स्वी-कृति प्रकट की। फिर वह अपने सिर को नीचे-ऊपर और अगल-बगल हिलाने लगा। मानसी इस समय बिल्कुल निस्तब्ध बनी हुई थी। मेरे बारे में उसे शक था—"क्या यह कोई बुद्धिमान आदमी है या निरा बकवासी?" इस विचार के कारण वह चिढ़ी हुई जान पड़ती थी। उसकी अर्धनिमीलित पलकों के नीचे उस-के काले चंचल नेत्र आगे-पीछे स्फुरित हो रहे थे। सिर्फ एक-बार उसने मेरी ओर देखा होगा, किन्तु उसकी उस दृष्टि में जिज्ञासा

थी, अनुसन्धान था, और दुष्टता थी...मैं खुद भी चकित हो रहा था। बैबूरिन कदाचित ही उससे कभी कुछ बोलता था ; किन्तु जब कभी वह उसे पुकारता था, उसकी आवाज में वात्सल्य-भरी कोमलता के बदले कठोरता-सी ही मालूम पड़ती थी।

इसके विपरीत पूनिन मानसी के साथ बराबर मजाक कर रहा था, वह उसका जवाब इच्छा न रहते हुए भी दिया करती थी। पूनिन उसे छोटी 'हिम-कुमारी', 'लघु हिम-खण्ड' कहता था।

"तुम मानसी को इन नामों से क्यों पुकारते हो ?" मैंने पूछा।

पूनिन हँस पड़ा। बोला, "क्योंकि वह ऐसी ही एक छोटी सर्द चीज है।"

"होश में आओ और ऐसे बोलो", बैबूरिन ने कहा, "जैसा कि एक नवयुवती के लिए उपयुक्त है।"

"हम उसे घर की मालकिन कह सकते हैं।" पूनिन बोल उठा, "क्यों भाई परोमन सेमोनिच ?" बैबूरिन ने अपनी त्यौरी बदली। मानसी वहां से खिसक गई। मैंने उस समय उसके इस इशारे को नहीं समझा।

इसी तरह दो घण्टे ज्यों-त्यों बीत गये। इस बीच पूनिन ने इस सम्माननीय गोष्ठी को प्रसन्न करने का भरसक प्रयत्न किया। मसलन वह एक कनारी पक्षी के पिंजड़े के सामने जमीन पर बैठ गया और पिंजड़े के दरवाजे को खोलकर पुकारा, "आओ, गुम्बद पर बैठ जाओ। गाना शुरू कर दो।" कनारी फौरन पिंजड़े से फड़फड़ाकर बाहर निकल आई और गुम्बद पर बैठ गई। वह गुम्बद पूनिन के गंजे सिर के सिवा और कुछ न थी। उसपर

बैठकर एक तरफ से दूसरी तरफ झूमती हुई और अपने नन्हे-नन्हे पंखों को डुलाती हुई उसने पूरे जोशखरोश के साथ गाना शुरू किया। जबतक यह गाना होता रहा, पूनिन बिल्कुल निश्चल बना हुआ बैठा रहा। सिर्फ़ वह अपनी आंखों को आधा मूंदे हुए अंगुली से इशारा करता जाता था। मैं यह सब देखकर हँसी नहीं रोक सका, किन्तु बैबूरिन या मानसी किसी को ज़रा भी हँसी नहीं आई।

जब मैं वहां से विदा हो रहा था, ठीक उसी समय बैबूरिन ने एक प्रश्न पूछकर, जिसकी मुझे कोई आशा न थी, मुझे आश्चर्य में डाल दिया। उसने कहा, "आप तो विश्वविद्यालय के छात्र हैं। मैं जानना चाहता हूं कि 'ज़ीनो' किस किस्म का आदमी था और उसके सम्बन्ध में आपके क्या विचार हैं?"

"ज़ीनो? कौन ज़ीनो?" मैंने कुछ घबराकर पूछा।

"प्राचीन काल का संत ज़ीनो। आप अवश्य ही इस नाम से अपरिचित न होंगे?"

स्टोयिक-पन्थ (वैराग्यवाद) के प्रतिष्ठापक के रूप में ज़ीनो का नाम मुझे कुछ-कुछ स्मरण हो आया। किन्तु मैं इससे अधिक उसके सम्बन्ध में रत्तीभर भी नहीं जानता था।

"हां, वह एक दार्शनिक था।" मैंने कहा।

"ज़ीनो", बैबूरिन ने विचारपूर्ण स्वर में फिर कहना शुरू किया, "एक ऐसा बुद्धिमान मनुष्य था, जिसका कथन था कि कष्ट सहन करना कोई पाप नहीं है, क्योंकि सहनशीलता सभी वस्तुओं पर विजय प्राप्त करती है, और इस संसार में अच्छी चीज़ एक ही है, वह है न्याय। पुण्य भी न्याय के सिवा और कुछ नहीं है।"

पूनिन श्रद्धापूर्वक इन बातों को सुन रहा था।

बैबूरिन कहता गया, "एक आदमी ने, जो यहां रहता था और जिसने बहुत-सी पुरानी किताबें संग्रह कर रखी थीं, मुझे यह उपदेश बताया था और इससे मुझे बड़ी प्रसन्नता हुई। किन्तु मैं देखता हूं कि तुम्हें इन विषयों में दिलचस्पी नहीं मालूम होती।"

बैबूरिन का कहना ठीक था। इन विषयों में निश्चय ही मेरी रुचि नहीं थी। जबसे मैंने विश्वविद्यालय में प्रवेश किया था, मैं उसी प्रकार प्रजातन्त्रवादी बन गया था, जैसा कि बैबूरिन। मिराबो और रोब्सपीयर के सम्बन्ध में मैं पूरी दिलचस्पी के साथ बातें करता, खासकर रोब्सपीयर...। मेरे लिखने की मेज के ऊपर फोकियरटिनवेली और चेलियर की तसवीरें लटक रही थीं। किन्तु ज़ीनो? ज़ीनो कहां से बीच में आ कूदा! मुझे विदा करते हुए पूनिन ने मुझसे आग्रह किया कि कल रविवार को फिर हमारे घर आना। बैबूरिन ने मुझे आने के लिए निमंत्रण नहीं दिया, बल्कि घुनघुनाकर बोला, "सीधे-सादे अज्ञातकुलशील मनुष्यों से बातें करना आप जैसे आदमी के लिए विशेष आनन्ददायक नहीं हो सकता और खासकर आपकी दादी को तो यह बिल्कुल पसन्द नहीं आयगा।" किन्तु दादी का नाम लेने पर मैंने उसे रोक दिया और बतला दिया कि दादी का अब मुझपर कुछ भी प्रभुत्व नहीं रह गया है।

"क्यों? सम्पत्ति पर तुम्हारा अधिकार नहीं हुआ है?" बैबूरिन ने पूछा।

"हां, मेरा अधिकार नहीं हुआ है।"—मैंने उत्तर दिया।

"तब तो इसका मतलब यह है कि..." बैबूरिन ने अपने

वाक्य को पूरा नहीं किया, किन्तु उसके बदले मन-ही-मन मैंने उसे यों पूरा कर लिया, "इसका अभिप्राय यह है कि अभी तुम निरे बालक हो।" मैं ज़ोर-से प्रणाम कहकर वहां से चल दिया।

आंगन से बाहर निकलकर सड़क पर जा ही रहा था कि मानसी एकाएक घर से दौड़कर बाहर आई और मुड़े हुए कागज़-का एक टुकड़ा मेरे हाथ में रखकर फौरन गायब हो गई। आगे सड़क पर लैम्प के खम्भे के पास मैंने उस कागज़ को खोला। उसमें कुछ लिखा था। बड़ी कठिनाई से मैंने पेन्सिल से लिखे हुए धुंधले अक्षरों को पढ़ा। "ईश्वर के नाम पर,"--मानसी ने लिखा था—"कल प्रातःकाल की प्रार्थना के बाद कुटाफिआ लाट के पास एलेकज़ेंड्रोवेस्की बाग में आना मैं तुम्हारी प्रतीक्षा करूंगी आने से इन्कार करके मुझे दुखी न करना मुझे तुमसे बहुत जरूरी मिलना है।"

इस पुर्जे के शब्दों के हिज्जे में कोई गलती नहीं थी, किन्तु उसमें कहीं कोई विराम-चिन्ह नहीं था। मैं हैरत में पड़ा हुआ घर वापस आया।

दूसरे दिन निश्चित समय से पंद्रह मिनट पूर्व जब मैं कुटा-फिआ लाट के नज़दीक पहुंच रहा था (अप्रैल का महीना था, कलियां चटक रही थीं, हरी-भरी घास चारों ओर दीख पड़ती थी और बकाइन की झाड़ियों के अन्दर चिड़ियां चहचहा रही थीं और आपस में लड़-झगड़ रही थीं।) कि इतने में घेरे से कुछ दूर पर एक तरफ मानसी को देखकर मैं बहुत विस्मित हुआ। वह मेरे आने के पहले ही वहां पहुंच गई थी। मैं उसकी तरफ बढ़ा, किन्तु वह खुद ही मेरे पास आ पहुंची।

"चलो, हम क्रेमल दीवार के पास चलें।" उसने अपनी आंखों को नीचे की ओर करके ज़मीन पर नजर दौड़ाते हुए शीघ्रतापूर्वक मेरे कान में कहा—"यहां बहुत-से लोग हैं।"

हम दोनों रास्ते से होकर पहाड़ी पर गये।

"मानसी", मैंने कहना शुरू ही किया था...किन्तु उसने फ़ौरन मेरी बात को बीच ही में काट दिया और पहले के समान उसी अधीरतापूर्ण दबी हुई ज़बान में कहना शुरू किया—"कृपया मेरी आलोचना मत करो और न मेरे सम्बन्ध में किसी बात का खयाल ही अपने मन में लाओ। मैंने तुमको पत्र लिखा और तुमसे मिलने के लिए समय निश्चित किया, क्योंकि...मुझे भय हो रहा था...कल मुझे ऐसा मालूम पड़ता था—तुम तमाम दिन हँसते हुए-से मालूम पड़ रहे थे। ध्यान देकर सुनो।" उसने फिर ज़ोर देकर कहा और मेरी तरफ मुखातिब होती हुई बोली "सुनो, अगर तुम इस बात का किसी से जिक्र करोगे कि किसके साथ और किस आदमी के कमरे में मेरे साथ तुम्हारी मुलाकात हुई थी तो मैं पानी में कूद पड़ूंगी और डूबकर मर जाऊंगी। मैं अपने जीवन का अन्त कर डालूंगी।"

इसी समय उसने पहले-पहल जिज्ञासाभरी चुभनेवाली दृष्टि से मुझे देखा।

"कहीं ऐसा न हो कि यह सचमुच ही ऐसा कर डाले!" यही विचार उस समय मेरे मन में आया।

"मानसी देवी", मैंने शीघ्र ही उसके कथन का प्रतिवाद करते हुए कहा, "तुमने मेरे सम्बन्ध में इस तरह की बुरी राय कैसे क़ायम कर ली? क्या तुम समझती हो कि मैं अपने मित्र के साथ विश्वासघात कर सकता हूं और तुम्हारा अनिष्ट कर

सकता हूं ? इसके अलावा, एक बात और भी तो है, तुम दोनों के बीच, जहांतक मैं जानता हूं, कोई ऐसा सम्बन्ध भी नहीं है, जो निन्दनीय हो। कृपाकर इसके लिए तुम शान्ति रखो।"

मानसी वहां खड़ी-खड़ी मेरी तरफ़ निगाह डाले बिना ही मेरी बातों को सुनती गई।

"मुझे तुमसे कुछ और भी बातें कहनी हैं।" उसने फिर रास्ते पर आगे बढ़ते हुए कहना शुरू किया, "तुम शायद यह न समझ लो कि मैं निरी पगली हूं। मैं तुमसे यह भी कह देना चाहती हूं कि वह बूढ़ा आदमी मुझसे शादी करना चाहता है।"

"कौन बूढ़ा आदमी ? वही गंजा, पूनिन ?"

"नहीं, वह नहीं। दूसरा...परोमन सेमोनिच।"

"बैबूरिन ?"

"हां।"

"क्या यह सम्भव है ? उसने तुमसे यह प्रस्ताव किया है ?"

"हां।"

"किन्तु तुमने स्वीकार तो नहीं किया होगा ?"

"हां, मैंने स्वीकार कर लिया था, क्योंकि उस समय मैं इस मामले को समझ नहीं सकी थी। अब वह बात बिल्कुल नहीं रही।"

मैंने अपने हाथों को ऊपर उठाकर आश्चर्य-चकित भाव में कहा, "बैबूरिन और तुम ? क्यों ? उसकी उम्र तो पचास से कम नहीं होगी।"

"वह अपनी उम्र तेतालीस साल बतलाता है। किन्तु इससे क्या ? अगर वह पच्चीस वर्ष का होता तो भी मैं उसके साथ शादी

नहीं करती। उसके साथ मुझे क्या आनन्द प्राप्त हो सकता है? सारे-का-सारा हफ्ता बीत जाता है और इस बीच एक बार उसके मुख पर मुस्कराहट नहीं दीख पड़ती। परोमन सेमोनिच मेरा उपकारकर्त्ता है, मैं उसकी अत्यन्त ऋणी हूं। उसने मुझे पाला-पोसा, पढ़ाया-लिखाया है। यदि वह न होता तो मैं बिल्कुल नष्ट हो गई होती। इसलिए यह लाज़िमी है कि मैं उसे पिता की दृष्टि से देखूं।...किन्तु उसकी पत्नी बनकर रहना! इससे तो मर जाना अच्छा है। सर पर कफ़न लपेट लेना बेहतर है।"

"मानसी देवी, तुम हमेशा मृत्यु के सम्बन्ध में क्यों बातें करती रहती हो?"

मानसी फिर रुक गई।

"तो क्या सचमुच जीवन इतना मधुर है? मन न लगने की वजह से शुष्क जीवन के कारण मैं तुम्हारे दोस्त पूनिन को भी प्यार करने लगी हूं। फिर बैबूरिन और उसका विवाह-सम्बन्धी प्रस्ताव!...पूनिन, यद्यपि अपनी कविताओं से मेरा सिर खपा डालता है, किन्तु वह मुझे किसी तरह भयभीत तो नहीं करता। वह संध्याकाल में, जब मैं थककर सोने की इच्छा करती हूं, मुझे करामज़िन पढ़ने के लिए बाध्य तो नहीं करता है। और यह बूढ़ा मेरे लिए क्या है? वह मुझे प्रेमहीन बतलाता है! क्या यह सम्भव है कि मैं उसके साथ रहकर प्रेम-युक्त बन सकूं? यदि वह मुझे ऐसा बनाने की कोशिश करेगा तो मैं कहीं चल दूंगी। बैबूरिन खुद हमेशा कहता रहता है—'स्वतन्त्रता, स्वतन्त्रता!' ठीक है, मैं भी तो स्वतन्त्रता चाहती हूं, नहीं तो फिर उसके कथन का यही अर्थ हो सकता है कि और सबके

लिए तो स्वतन्त्रता और मुझे पिंजड़े में बन्द करके रखना—मेरे लिए परतन्त्रता। मैं उससे खुद ऐसा कहूंगी। किन्तु यदि तुम मेरे साथ विश्वासघात करोगे या उस बात का इशारा भी करोगे तो याद रखो कि वे लोग फिर कभी मुझे नहीं देख पावेंगे।"

मानसी रास्ते के बीच में खड़ी हो गई।

"वे लोग फिर कभी भी मुझे नहीं देख पावेंगे।" उसने फिर इस बात को तेज़ी के साथ दुहराया। इस बार भी उसने मेरी ओर आंख उठाकर नहीं देखा। ऐसा प्रतीत होता था कि उसे इस बात का ज्ञान है कि यदि कोई उसके चेहरे की ओर सामने से देख लेगा तो वह अपनेको छिपा नहीं सकेगी, देखनेवाला उसके दिल की बात ताड़ जायगा। और ठीक यही कारण था, जिससे वह क्रुद्ध अथवा खिन्न होने के सिवा—जब कि वह बातचीत करनेवाले के चेहरे की ओर सीधे टकटकी लगाकर देखा करती थी—और किसी वक्त अपनी आंखों को ऊपर नहीं उठाती थी। किन्तु उसका छोटा खूबसूरत चेहरा अदम्य संकल्प से प्रदीप्त हो रहा था।

उस समय यह विचार मेरे मन में आया—"टारहोव का कहना बिल्कुल दुरुस्त था। यह लड़की सचमुच एक नये ढंग की है।"

"तुम्हें मुझसे डरना नहीं चाहिए।" मैंने आखिर उससे कहा।

"सचमुच ? यदि तुम हम दोनों के सम्बन्ध में कुछ कह भी दो...लेकिन यदि कुछ होता भी..." इससे आगे वह नहीं बोल सकी।

"उस हालत में तुम्हें मुझसे नहीं डरना चाहिए। मानसी, मैं तुम्हारा न्यायाधीश नहीं हूं। तुम्हारा गुप्त रहस्य मेरे हृदय में छिपा है।" मैंने अपने हृदय की तरफ इशारा करके कहा। मुझपर विश्वास रखो, मैं दूसरों की कद्र करना अच्छी तरह जानता हूं।..."

"क्या मेरा वह पत्र तुम्हारे पास है ?" मानसी एकाएक पूछ बैठी।

"हां।"

"कहां है ?"

"मेरी जेब में।"

"लाओ, मुझे दे दो...तुरन्त।"

मैंने काग़ज के टुकड़े को जेब से बाहर निकाला। मानसी ने उसे मेरे हाथ से छीनकर अपने रूखे छोटे हाथों में ले लिया। वह मेरे सामने एक क्षण तक चुपचाप खड़ी रही, मानों वह मुझे धन्यवाद देना चाहती हो। किन्तु वह अचानक चौंक पड़ी, चारों ओर देखने लगी और विदा होते समय एक शब्द भी कहे बिना ही दौड़कर पहाड़ी के नीचे चली गई। जिस दिशा की ओर वह गई थी, उधर ही मैंने नज़र दौड़ाई। लाट से कुछ ही दूर पर मेरी दृष्टि एक मनुष्य पर पड़ी, जिसे मैंने फ़ौरन पहचान लिया। वह टारहोव था। "अहा मेरे दोस्त", मैंने सोचा, "तुम्हें इसकी सूचना जरूर मिली होगी, तभी तो तुम पहले से ही इसकी ताक में थे !"

फिर मैं धीमे-धीमे सीटी बजाता हुआ वहां से घर की तरफ चल पड़ा।

दूसरे दिन प्रातःकाल मैं चाय पीकर बैठा ही था कि इतने में पूनिन आ पहुंचा। वह परेशान चेहरा बनाये हुए मेरे कमरे में दाखिल हुआ और झुककर सलाम किया। वह इधर-उधर देखने लगा और इस प्रकार बिना इज़ाजत कमरे में दाखिल होने के लिए क्षमा-याचना करने लगा। मैंने शीघ्र ही उसे आश्वासन दिलाया कि ऐसी कोई बात नहीं है। मेरे मन-का पाप तो देखिये कि मेरे दिल में यह खयाल आया कि हो-न-हो, पूनिन मुझसे रुपया उधार लेने का इरादा करके आया है। किन्तु उसने सिर्फ़ थोड़ी-सी शराबसहित चाय का एक प्याला मांगा। संयोगवश चाय का बर्तन उस समय मौजूद था, हटाया नहीं गया था। "घबराहट और पस्तदिली के साथ मैं तुमसे मिलने आया हूं", उसने थोड़ी-सी चीनी लेते हुए कहा, "तुमसे तो मैं भय नहीं करता ; किन्तु तुम्हारी सम्माननीया दादी से मैं डरता हूं। मुझे अपनी पोशाक पर भी संकोच होता है, जैसा कि मैंने तुमसे पहले कह दिया है।" पूनिन ने अपने जीर्ण कोट के उड़े हुए किनारे पर अंगुली रखते हुए कहा, "घर पर इस तरह के फटे-पुराने कपड़े पहने रहने में कोई हर्ज नहीं है, राह चलते सड़कों पर भी पहन जा सकते हैं। किन्तु जब किसी स्वर्ण-मंडित राजमहल में जाना पड़ता है, उस समय दरिद्रता का नग्न-रूप दिखाई देने लगता है और घबराहट मालूम होने लगती है।"

मैं मकान के नीचे के तल्ले के दो छोटे-छोटे कमरों में रहा करता था। इन कमरों को देखकर कोई भी उन्हें राजमहल नहीं कह सकता था, स्वर्ण-मंडित होने की बात तो दूर रही। किन्तु पूनिन के इस कथन का अभिप्राय मेरी दादी के सम्पूर्ण मकान

से था, यद्यपि वह भी कुछ विशेष सजा-धजा नहीं था। मैं पिछले दिन उन लोगों के घर मिलने नहीं गया, इसलिए पूनिन ने मुझे उलहना दिया, "बैबूरिन तुम्हारी प्रतीक्षा कर रहा था, यद्यपि उसने कह दिया था कि तुम निश्चय ही नहीं आओगे और मानसी भी तुम्हारी इन्तज़ारी में थी।"

"क्या कहा, मानसी भी ?" मैंने पूछा।

"हां, वह भी। हमारे साथ जो वह लड़की है, वह बड़ी मनोहारिणी है। है न ? तुम क्या समझते हो ?"

"सचमुच मनोहारिणी है।" मैंने अपनी स्वीकृति दी।

पूनिन अपने नंगे सिर को खूब ज़ोर-ज़ोर से रगड़ने लगा। "जनाब, वह सौन्दर्य की मूर्त्ति है, मोती है, या यों कहिये कि हीरा है। यह सब जो मैं आपसे कह रहा हूं, वह बिल्कुल सच है।" वह झुककर कान के पास आ गया और धीमे स्वर में कहने लगा—"वंश भी अच्छा है, सिर्फ़ तुम इतना समझ रखो कि उसका जन्म जायज़ माता-पिता से नहीं हुआ था। उसके मां-बाप मर गये, उसके सम्बन्धियों ने उसकी कोई खबर नहीं ली और उसे बिल्कुल भाग्य के भरोसे छोड़ दिया, अर्थात् हताश होकर उसे भूखों मरने दिया। किन्तु इसी समय बैबूरिन, जो बहुत दिनों से दुखियों का त्राता समझा जाता है, आगे बढ़ा। वह उस लड़की को अपने यहां ले आया, उसे अन्न-वस्त्र देकर यत्नपूर्वक पाला-पोसा और बड़ा किया और अब वह बढ़कर हम लोगों की प्रिय पात्र बन गई है। मैं तुमसे कहता हूं, बैबूरिन में अपूर्व गुण हैं।"

पूनिन आरामकुर्सी पर लेट गया, उसने अपने हाथों को ऊपर उठाया और फिर आगे झुककर मेरे कानों में धीरे-धीरे, किन्तु

पहले से भी अधिक रहस्यपूर्ण भाव में कहना शुरू किया, "तुम भी तो बैबूरिन को देखते हो। क्या तुम नहीं जानते हो ? वह भी एक उच्च वंश का है ..किन्तु उसका जन्म भी जायज़ माता-पिता से नहीं हुआ था। कहते हैं, उसका पिता राजा डेविड के कुल का एक शक्तिशाली जार्जवंशीय नरेश था...इससे तुम क्या समझते हो ? चन्द शब्दों में ही कितनी बातें कह दी गई हैं ? राजा डेविड के कुल का रक्त ! इस सम्बन्ध में तुम्हारा क्या खयाल है ? दूसरी दूतवृत्ति के अनुसार बैबूरिन के वंश का प्रतिष्ठापक एक हिन्दुस्तानी बादशाह बाबर था। महान् उच्च वंशका रक्त। क्या कहना है !"

"अच्छा !" मैंने पूछा, "यह तो बताओ कि क्या बैबूरिन भी भाग्य के भरोसे छोड़ दिया गया था ?"

पूनिन ने फिर अपनी खोपड़ी खुजलाई, "हां, वह भी छोड़ दिया गया था और सो भी हमारी उस छोटी लड़की की अपेक्षा अधिक क्रूरता के साथ। अपने जीवन की बाल्यावस्था से ही उसे कठिनाइयों के साथ संग्राम करना पड़ा है और वस्तुतः मैं यह स्वीकार करूंगा कि रूबन की कविता से अनुप्राणित होकर मैंने बैबूरिन का चित्र चित्रित करने के लिए जिस पद की रचना की थी, उसमें इस बात का जिक्र कर दिया था। ठहरो जरा···वह पद कैसा था ? हां सुनो—

"दुःख और दुर्भाग्य निरन्तर करते रहते थे आघात।
कष्टों की अथाह खाई में देखा उसने जीवन-प्रात
किन्तु चीरकर अन्धकार को रवि का ज्यों प्रकाश गम्भीर
विजयमाल को लिये भाल में आया वह बैबूरिन वीर।"

पूनिन ने इन पंक्तियों को स्वर-ताल-युक्त संगीत-स्वर में जैसा

कि कविता-पाठ होना चाहिए, पढ़ सुनाया ।

"सो इससे ही मालूम होता है कि वह किस प्रकार एक प्रजातन्त्रवादी है !" मैं बोल उठा ।

"नहीं, यह कारण नहीं है," पूनिन ने उत्तर दिया, "बहुत दिन हुए उसने अपने पिता को क्षमा कर दिया, किन्तु वह किसी भी तरह का अन्याय सहन नहीं कर सकता । दूसरे के दुःखों को देखकर वह विचलित हुए बिना नहीं रह सकता ।"

कल मानसी से मैंने जो बात सुनी थी, अर्थात् बैबूरिन के विवाह-विषयक प्रस्ताव के सम्बन्ध में, उसीका जिक्र इस बातचीत में मैं लाना चाहता था, पर मैं समझ नहीं पाता था कि इस प्रसंग को किस तरह छेड़ा जाय । आखिर पूनिन ने खुद ही मुझे इस कठिनाई से निकाल दिया ।

"कल जबकि तुम हम लोगों के साथ थे, क्या तुम्हें कोई खास बात नहीं दीख पड़ी ?" वह अपनी आंखों को चालाकी के साथ मटकाते हुए मुझसे एकाएक पूछ बैठा ।

"क्यों, क्या ऐसी कोई खास बात देखने की थी ?"—मैंने उससे पूछा ।

पूनिन ने अपने कंधे की तरफ देखा, मानो वह इस बात से आश्वस्त हो जाना चाहता हो कि कोई उसकी बात को सुन तो नहीं रहा है । "हम लोगों की सुकुमारी सुन्दरी मानसी बहुत शीघ्र वधू बनने जा रही है ।"

"सो कैसे ?"

"श्रीमती बैबूरिन ।" पूनिन ने कोशिश करके इन शब्दों का उच्चारण किया और फिर अपने खुले हुए हाथों से घुटनों पर बार-बार थपकी देते हुए एक चीनी अफसर की तरह अपने सिर

को हिलाया।

"असम्भव।" कृत्रिम आश्चर्य प्रकट करते हुए मैंने जोर से कहा। पूनिन का सिर धीरे-धीरे स्थिर हो चला और उसके हाथ नीचे गिर आये। "असम्भव क्यों? क्या यह मैं पूछ सकता हूं?"

"क्योंकि बैबूरिन उस नवयुवती का पिता होने योग्य है; क्योंकि दोनों की उम्र में जो फर्क है, उसके कारण बालिका की ओर से प्रेम की सम्भावना बिल्कुल नहीं रह जाती।"

"बिल्कुल नहीं रह जाती।" पूनिन ने उत्तेजित स्वर में इस वाक्य को दुहराया, "किन्तु कृतज्ञता, विशुद्ध प्रेम, कोमल भावना, क्या ये सबकुछ भी नहीं हैं? प्रेम की सम्भावना बिल्कुल नहीं रह जाती? ज़रा इस बात पर भी तो गौर करो। माना कि मानसी एक बहुत ही अच्छी लड़की है, किन्तु बैबूरिन का स्नेह-भाजन बनना—उसके सुख का साधन बनना, उसके जीवन का आधार बनना—सारांश यह कि उसकी अर्द्धांगिनी बनना उसकी जैसी लड़की के लिए भी क्या महत्तम सम्भवनीय आनन्द का विषय नहीं है? और वह खुद इस बात को अच्छी तरह समझती है। तुम स्वयं ही ध्यानपूर्वक उसकी तरफ दृष्टि डालकर देख लो न! बैबूरिन की उपस्थिति में मानसी उसके प्रति कैसी श्रद्धालु, कम्पायमान तथा आवेश-पूर्ण हो जाती है।"

"यही तो खराबी है, पूनिन! जैसा कि तुम कहते हो कि वह कम्पायमान हो जाती है। अगर तुम किसीको प्यार करते हो तो उसके सामने कांपते थोड़े ही हो।"

"किन्तु तुम्हारी इस बात से मैं सहमत नहीं हो सकता। मेरा ही दृष्टान्त लो न। मुझसे बढ़कर बैबूरिन को कोई प्यार नहीं करता, किन्तु मैं उसकी उपस्थिति में काँपने लगता हूं।"

"वाह, अच्छी कही ! तुम्हारी बात दूसरी है।"

"दूसरी कैसे ?"

"कैसे ? किस तरह ?" पूनिन बीच में ही बोल उठा। मैं उस समय उसके भाव को ताड़ नहीं सका। वह गरम हो उठा था, यहांतक कि क्रुद्ध भी हो चला था और उसकी बोली में भी पहले-जैसी संगीत-ध्वनि नहीं रह गई थी।

"नहीं," उसने कहा, "मैं देखता हूं कि तुममें मानवचरित्र परखने योग्य दृष्टि नहीं है। तुम लोगों के हृदय की बात भी नहीं जान सकते।"

मैंने उसके कथन का खण्डन करना छोड़ दिया...और बातचीत के रुख को बदल देने के खयाल से यह प्रस्ताव किया कि पुराने समय की बात याद करके हम दोनों को साथ मिलकर कुछ पढ़ना चाहिए।

पूनिन कुछ क्षणों तक मौन रहा। आखिर उसने पूछा—"प्राचीन कवियों में से ? यथार्थवादी कवियों में से ?"

"नहीं, एक नये कवि की।"

"नये कवि की ?" ···पूनिन ने अविश्वाससूचक भाव में दुहराया।

"पुश्किन," मैंने जवाब दिया। मुझे अचानक 'जिप्सी' की याद आ गई, जिसके बारे में कुछ ही दिन पहले टारहोव ने मुझसे कहा था। उसमें एक गीत बूढ़े पति के सम्बन्ध में है। पूनिन कुछ कुड़कुड़ाया, लेकिन मैंने उसे सोफा पर बिठला दिया, जिससे वह आराम के साथ ध्यानपूर्वक सुन सके। फिर इसके बाद मैंने पुश्किन की कविता पढ़नी शुरू की। आखिर उसमें वह पद भी आ गया—

बाबा कहलाये जानेपर मिटी न जिनके मनकी चाह।
बासी कढ़ी उबल आई है, देखो इस बूढ़े का ब्याह!

पूनिन ने उस गीत को अन्त तक सुना और फिर एकाएक आवेश में आकर खड़ा हो गया।

"मैं यह नहीं सुन सकता"— उसने इतने गम्भीर आवेश में आकर कहा कि उसके इस कथन का मुझपर भी प्रभाव पड़े बिना न रहा। "माफ करो, मैं उस कवि की कविता अब अधिक नहीं सुन सकता। वह एक नीतिभ्रष्ट निन्दक है। वह एक मिथ्यावादी है।...उससे मैं घबरा उठता हूं। मैं यह नहीं सुन सकता। अच्छा, बस मुझे जाने दो।"

पूनिन कुछ देर और ठहरे, इसके लिए मैं उसे समझाने-बुझाने की कोशिश करने लगा, किन्तु उसने अपनी जिद पर डटे रहने का आग्रह दिखलाया। उसने बार-बार इस बात को दुहराया—"मुझे घबराहट मालूम हो रही है और मैं ताजी हवा में जाकर सांस लेना चाहता हूं।" उसके होंठ बराबर धीमे-धीमे कांप रहे थे और वह अपनी आंखों को मुझसे चुरा रहा था, मानों मैंने उसके दिल पर चोट पहुंचाई हो। आखिर वह चला गया। कुछ समय के बाद मैं भी घर से बाहर निकलकर टारहोव से मुलाकात करने के लिए चल पड़ा।

बिना किसी प्रकार के शिष्टाचार के, बिना किसी से कुछ पूछे, जैसी कि विद्यार्थियों की आदत हुआ करती है, मैं सीधे उसके घर में दाखिल हो गया। पहले कमरे में कोई भी आदमी न था। मैंने टारहोव का नाम लेकर पुकारा और उसका कोई उत्तर न पाकर वापस लौटना ही चाहता था कि इतने में पास के एक कमरे का दरवाजा खुला और टारहोव उपस्थित हुआ।

उसने अजीब ढंग से मेरी ओर देखा और बिना कुछ बोले ही मुझसे हाथ मिलाया। पूनिन से मैंने जो कुछ सुना था, वह सब उसे बतलाने के लिए आया था। यद्यपि मुझे तुरन्त यह मालूम हो गया कि टारहोव से मिलने का मैंने ठीक मौका नहीं चुना था, तथापि थोड़ी देर तक इधर-उधर की बातें करने के बाद आखिर मैंने उसे मानसी के सम्बन्ध में बैबूरिन की आकांक्षाएं बतला दीं। इस खबर को सुनकर प्रत्यक्ष रूप में वह अधिक विस्मित नहीं जान पड़ा। वह चुपचाप मेज के पास बैठ गया और अपनी आंखों को मेरी तरफ गड़ाये हुए और पहले के समान ही मौन भाव में उसने ऐसे भाव जाहिर किये, मानों वह यह कहना चाहता हो—"अच्छा, और तुम्हें क्या कहना है? जो तुम्हारे ख्याल हों, उन्हें कह डालो।"

मैं गौर के साथ उसके चेहरे की तरफ देखने लगा। उसमें मुझे उत्कंठा, कुछ व्यंग तथा किंचित अहंकार का भाव दीख पड़ा, किन्तु इससे मुझे अपने विचारों को प्रकट करने में कोई रुकावट नहीं हुई। इसके विपरीत उसके सम्बन्ध में मेरे मन में यही खयाल पैदा हुआ—"तुम अपनी शान दिखला रहे हो, इसलिए मैं तुम्हें छोड़ूंगा नहीं।" मैंने उसे उपयुक्त उपदेश देना शुरू किया—"देखो, आवेशजनित भावनाओं के सामने झुकने में बड़ी बुराई है। प्रत्येक आदमी का यह कर्त्तव्य है कि वह दूसरे आदमी की स्वतन्त्रता तथा व्यक्तिगत जीवन के प्रति आदर-भाव रखे। इत्यादि।" इस प्रकार कहते हुए मैं बेतकुल्लफी के खयाल से कमरे में इधर-उधर घूमने लगा।

टारहोव ने न तो मुझे बीच में टोका, और न वह अपनी जगह से टस-से-मस हुआ। वह सिर्फ अपनी ठुड्डी पर अंगुलियों

को दौड़ा रहा था।

"मैं जानता हूं", मैंने कहा...(मेरे इस कथन का ठीक उद्देश्य क्या था, इसकी मुझे भी कोई स्पष्ट भावना न थी—बहुत सम्भव है कि वह ईर्ष्या हो। किन्तु इतना तो जरूर था कि वह नीतिनिष्ठा नहीं थी।) "मैं जानता हूं"—मैंने कहा—"कि यह आसान नहीं है। यह हँसी की बात नहीं है। मुझे निश्चय है कि तुम मानसी को प्यार करते हो और मानसी तुम्हें प्यार करती है। यह तुम्हारे लिए योंही कोई क्षणिक उमंग नहीं है, किन्तु देखो, यदि हम यह मान लें। (यहां मैंने अपने हाथों को मोड़कर छाती पर रखा).. हम यह मान लें कि तुम वासना को तृप्त भी कर लो तो इससे क्या होगा? तुम उसके साथ शादी नहीं करोगे, यह तुम खुद भी जानते हो, किन्तु अपनी इस कार्रवाई से तुम एक अत्युत्तम, ईमानदार और उसके उपकारी व्यक्ति के सुख का सर्वनाश कर रहे हो...और कौन जानता है...(यहां मेरे चेहरे से एक साथ ही सुतीक्ष्णता एवं चिन्ता का भाव व्यक्त होने लगा)...कि शायद मानसी के निजी सुख का भी .."

इसी प्रकार मैं कहता चला गया।

प्राय: पन्द्रह मिनट तक मेरे इस कथन का प्रवाह जारी रहा। टारहोव अब भी मौन था। मैं उसके मौन पर घबराने लगा। मैं समय-समय पर उसकी ओर देख लिया करता था, किन्तु इसका यह अभिप्राय नहीं था कि मुझे इस बात का संतोष हो जाय कि मेरे शब्दों का उसपर प्रभाव पड़ रहा है, बल्कि यह जानने का था कि उसने क्यों मेरे कथन पर न तो कुछ उज्र ही किया और न अपनी सहमति प्रकट की, बल्कि एक गूंगे और

बहरे व्यक्ति की तरह चुपचाप बैठा रहा। आखिर मुझे यह अनुमान हुआ कि उसके चेहरे पर परिवर्त्तन का लक्षण दृष्टिगोचर हो रहा है। उससे बेचैनी और दुःखद विक्षोभ के चिह्न परिलक्षित होने लगे, फिर भी आश्चर्य की बात तो यह थी कि...वह उत्कण्ठा, वह प्रकाश, वह हँसती हुई-सी कोई वस्तु, जो मुझे प्रथम बार टारहोव की ओर दृष्टिपात करने पर दीख पड़ी थी, इस समय भी उसके विक्षुब्ध एवं विषण्ण मुखमंडल पर विद्यमान थी।

मैं यह निश्चय नहीं कर सका कि अपने उपदेश की सफलता पर अपनेको बधाई दूं, या नहीं, जबकि टारहोव एकाएक उठ खड़ा हुआ और मेरे दोनों हाथों को दबाकर जल्दी-जल्दी बोलते हुए मुझ से कहा—"धन्यवाद, तुम्हें धन्यवाद! तुम्हारा कहना बिलकुल ठीक है,...यद्यपि दूसरे पक्ष में यह भी प्रश्न हो सकता है कि...आखिर बैबूरिन, जिसके विषय में तुम इतनी डींग मारते हो, है क्या चीज ? वह एक ईमानदार मूर्ख के सिवा और कुछ भी नहीं है। तुम उसे प्रजातन्त्रवादी कहते हो, किन्तु है वह महज मूर्ख। बस, वह जो कुछ है, यही है। उसके सारे प्रजातन्त्रवाद का अर्थ यही है कि उसकी कभी कहीं गुजर नहीं हो सकती!"

"आह! यही तुम्हारा खयाल है! एक मूर्ख की कभी गुजर नहीं हो सकती ? किन्तु मैं तुमसे कहूंगा"—मैंने कुछ गरम होकर कहना शुरू किया—"मेरे प्यारे ब्लाडीमीर निकोलेच, मैं तुमसे यह कहूंगा कि इस जमाने में कहीं भी गुजर न होना एक उत्तम और उदार प्रकृति का लक्षण समझा जाता है। जो लोग बेकार होते हैं, जो बुरे होते हैं, वही जहां-तहां अपनी गुजर

कर लेते हैं और अपने को प्रत्येक परिस्थिति के अनुकूल बना लेते हैं। तुम कहते हो कि बैबूरिन एक ईमानदार मूर्ख है। क्यों, तब क्या तुम्हारी समझ से बेईमान और चालाक होना उससे अच्छा है ?"

"तुम तो मेरे शब्दों को तोड़-मरोडकर दूसरा ही अर्थ निकालते हो !" टारहोव जोर से बोला—"मैं सिर्फ यह कहना चाहता था कि मैं उस आदमी को किस रूप में समझता हूं। क्या तुम मानते हो कि वह एक अनुपम व्यक्ति है ? कदापि नहीं। मुझे उसके जैसे आदमी अपने जीवन में बहुत-से मिले हैं। वह अपने चेहरे को ज़रा गम्भीर, मौन, हठी और वक्र बनाकर बैठा रहता है...अहा-हा-हा ! बस, तुम कहोगे कि उसके चेहरे से मालूम होता है कि उसके अन्दर बहुत-कुछ है, किन्तु दरअसल उसमें कुछ भी नहीं है, उसके दिमाग में एक भी विचार नहीं है। जो कुछ है, वह सिर्फ आत्म-प्रतिष्ठा का खयाल है।"

"अगर आत्म-प्रतिष्ठा के अलावा और कुछ न भी हो तो भी वह एक सम्मान-जनक वस्तु है।" मैं बोल उठा--"किन्तु यह तो बतलाओ कि तुम्हें उसके चरित्र का इस प्रकार अध्ययन करने का अवसर कहां मिला ? तुम तो उसे जानते भी नहीं। क्यों ? या मानसी ने तुमसे उसके बारे में जो कुछ कहा है, उसके आधार पर तुम उसका वर्णन करते हो ?"

टारहोव ने अपने कंधे को हिलाया। "मानसी और मैं ! हम दोनों में बातचीत करने के लिए और ही विषय हैं। मैं तुमसे यह कहता हूं"...इतना कहते समय उसका सम्पूर्ण शरीर अधीरता के कारण कांप उठा—"मैं तुमसे कहता हूं कि अगर बैबूरिन इतने भले और ईमानदार स्वभाव का है तो

वह क्योंकर यह नहीं देख पाता कि मानसी उसके उपयुक्त जोड़ी नहीं है ? इन दो बातों में एक बात हो सकती है : या तो वह जानता है कि वह उसके साथ जो कुछ कर रहा है, वह कृतज्ञता के नाम पर एक प्रकार का अत्याचार है...और यदि ऐसा ही हो तो फिर उसकी ईमानदारी कहां रही ? या वह जो कुछ कर रहा है, उसे अच्छी तरह समझ नहीं पाता . इस हालत में उसे मूर्ख के सिवा और कह ही क्या सकते हैं ?"

मैं जवाब देना ही चाहता था, किन्तु टारहोव ने फिर मेरे हाथों को जोर से पकड़ लिया और तेजी से कहना शुरू किया—"यद्यपि.. अवश्य...मैं यह स्वीकार करता हूं कि तुम्हारा कहना ठीक है, सहस्रों बार ठीक है ।...तुम मेरे एक सच्चे दोस्त हो...किन्तु अब मुझे कृपया अकेले छोड़ दो ।"

मैं हैरत में पड़ गया । "तुम्हें अकेला छोड़ दूं ?"

"हां, जरूर मुझे अकेला छोड़ दो । क्या तुम देखते नहीं, अभी-अभी तुमने जो कुछ कहा है, उसपर अच्छी तरह विचार करो...मुझे इसमें शक नहीं कि तुम्हारा कहना दुरुस्त है, किन्तु अब मुझे अकेले ही रहने दो ।"

"तुम इस समय उत्तेजित अवस्था में हो..." मैंने कहना शुरू किया ।

"उत्तेजना ? मैं ?" टारहोव हँस पड़ा, किन्तु फौरन ही उसने अपनेको संभाल लिया—"हां, जरूर मैं उत्तेजित हूं । उत्तेजित मैं होता नहीं तो क्योंकर ? तम खुद ही कहते हो कि यह कोई हँसी की बात नहीं है । हां, मुझे इस सम्बन्ध में अकेले ही विचार करना चाहिए ।" वह अबतक मेरे हाथों को

दबा रहा था। "अच्छा, मेरे प्यारे दोस्त, विदा।"

मैंने विदा होते समय उससे कहा—"अच्छा, विदा!"

वहां से चलते-चलते मैंने आखिरी बार टारहोव की ओर देखा। वह प्रसन्न मालूम पड़ता था। किन्तु किस बात पर? या तो इस बात पर कि मैंने, एक सच्चे दोस्त और साथी की हैसियत से, उसे उस मार्ग के खतरे से आगाह कर दिया था, जिसपर उसने पांव रखा था—या इस बात पर कि मैं वहां से विदा हो रहा था। तमाम दिन संध्याकाल तक मेरे मस्तिष्क में नाना प्रकार के विचार चक्कर काटते रहे, जबतक कि मैंने पूनिन और बैबूरिन के मकान में प्रवेश नहीं किया। मैं उसी दिन उन लोगों से मिलने गया। मैं यह बात स्वीकार किये बिना नहीं रह सकता कि टारहोव के कुछ वाक्य मेरे अन्तरतम में प्रविष्ट हो गये थे...और इस समय भी वे मेरे कानों में गूँज रहे थे।...क्या सचमुच यह सम्भव था कि बैबूरिन... क्या यह सम्भव था कि वह यह नहीं समझता हो कि मानसी उसके उपयुक्त जोड़ी नहीं है?

पर क्या यह सम्भव हो सकता था, बैबूरिन—स्वार्थत्यागी बैबूरिन—ईमानदार मूर्ख हो!

पूनिन जब मुझसे मिलने आया था तो उसने कहा था—"हमारे घर पर एक दिन पहले तुम्हारे आने की प्रतीक्षा की जा रही थी।" यह हो सकता है, किन्तु आज के दिन तो अवश्य ही कोई मेरे आने की आशा नहीं रखता था। मैंने सबको घर पर ही मौजूद पाया और सभीको मेरे आने पर आश्चर्य हुआ। बैबूरिन और पूनिन दोनों ही अस्वस्थ थे। पूनिन के सिर में दर्द हो रहा था। वह एक पलंग पर अपने शरीर को सिकोड़े हुए

लेटा था, उसके सिर में रूमाल बन्धा हुआ था, और पेशानियों पर ककड़ी के टुकड़े रखे हुए थे। बैबूरिन पित्त की बीमारी से पीड़ित था। वह बिलकुल पीला दीख पड़ता था। उसकी आंखों के चारों ओर गोलाकार रेखाएं पड़ गई थीं, भौंहें सिकुड़ी हुई थीं और दाढ़ी के बाल बढ़े हुए थे। वह एक दुलहा के समान तो लगता था! मैंने वहां से चलने की कोशिश की.....किन्तु उन लोगों ने मुझे जाने नहीं दिया, और चाय पीने के लिए आग्रह किया।

संध्याकाल वहां प्रसन्नतापूर्वक नहीं बीता। यद्यपि मानसी को कोई रोग नहीं था और वह पहले जितनी संकोचशील भी नहीं थी, पर साफ तौर से वह चिढ़ी हुई और क्रुद्ध-सी दीख पड़ती थी...आखिर वह अपनेको रोक नहीं सकी और मेरे हाथ में चाय का प्याला देते हुए, कान के पास सटकर जल्दी-जल्दी कहने लगी—"तुम जो चाहो सो कहो, तुम चाहे जितनी ही कोशिश करो, किन्तु उससे कोई फर्क नहीं पड़ सकता!" मैं ताज्जुब में आकर उसकी तरफ देखने लगा और मौका पाकर मैंने चुपके से उसके कान में कहा—"तुम्हारे कहने का क्या मतलब है?"

"बताऊंगी।" उसने जवाब दिया। उसकी काली आंखें, उसकी तनी हुई भौंहों के नीचे से क्रुद्ध-भाव में चमकती हुई एक क्षण तक मेरे चेहरे पर गड़ी रहीं, फिर फौरन ही वहां से हट गईं—"मेरे कहने का मतलब यह है कि आज तुमने वहाँ जो कुछ कहा था, वह सब मैंने सुन लिया और इन निरर्थक बातों के लिए मैं तुम्हें धन्यवाद देती हूं, क्योंकि जैसा तुम चाहते हो, वैसा किसी भी तरह से हो नहीं सकता।"

"तुम वहां मौजूद थीं ?" मेरे मुंह से अनजाने यह निकल पड़ा...किन्तु इसी समय बैबूरिन का ध्यान इधर आकृष्ट हुआ और उसने हम लोगों की ओर देखा। मानसी मेरे पास से खिसक गई।

दस मिनट के बाद वह किसी तरह फिर मेरे पास आ पहुंची। उसे देखने से मालूम पड़ता था कि वह कोई साहसिक एवं भयंकर बात मुझसे कहने के लिए उत्सुक हो, मानो वह अपने संरक्षक के सामने ही, उसकी सावधान दृष्टि के नीचे ही, सिर्फ उसे संदेह नहीं हो, इतना बचाकर, उन बातों को मुझसे कह देना चाहती हो। यह तो एक जानी हुई बात है कि किसी खतरनाक खाई-खन्दक के ऊपर बिलकुल किनारे पर चलना स्त्रियों का एक प्रिय कौतुक है। "हां, मैं वहां मौजूद थी।" मानसी ने धीमे स्वर में कहा। उस समय उसकी आकृति में कोई परिवर्तन नहीं दीख पड़ता था। सिर्फ उसके नथुने कुछ-कुछ कांप रहे थे। "हां, अगर बैबूरिन मुझसे पूछ बैठे कि मैं तुम्हारे कानों में लग कर क्या कह रही हूं तो उससे इसी वक्त सारी बातें कह दूंगी। मुझे उसकी परवा ही क्यों होने लगी ?"

"जरा सावधान," मैंने उससे प्रार्थना की। "मेरा सचमुच खयाल है कि वे लोग हमें देख रहे हैं।"

"मैं तुमसे कहती हूं, मैं उनको सारी बातें सुनाने के लिए बिलकुल तैयार हूं। फिर हमें देख ही कौन रहा है ? उनमें एक तो गुड़ी-मुड़ी बीमार पड़ा है और कुछ भी नहीं सुनता, दूसरा अपने गम्भीर दार्शनिक विचार में डूबा है। तुम डरो मत।" मानसी की आवाज कुछ ऊंची हो उठी और उसके गालों पर क्रमशः एक प्रकार की फीकी लाली दौड़ गई। उसके चेहरे पर

यह लाली खूब फबती थी और इतनी सुन्दर वह पहले कभी मालूम नहीं हुई थी। मेज को साफ करते हुए और चाय के प्याले तथा तश्तरी को अपने-अपने स्थान पर रखते हुए, वह कमरे में तेजी के साथ इधर-उधर घूम-फिर रही थी। उस समय ऐसा मालूम पड़ता था, मानों अपनी सहज स्वतन्त्र चाल-ढाल से वह किसीको चुनौती दे रही हो। उसे देखने से प्रतीत होता था, मानों वह कह रही हो—"तुम चाहे जैसे मेरी आलोचना करो, किन्तु मैं तो अपने ढंग पर ही चलती रहूंगी और मुझे तुम्हारा कुछ डर भी नहीं है।

मैं इस बात को छिपा नहीं सकता कि उस शाम मानसी मुझे बहुत ही मनोमुग्धकर-सी जान पड़ी। "हां," मैंने अपने मन में सोचा—"यह एक छोटी चंडी है—यह एक नये ढंग की है··· यह अनुपम है। दिल पर चोट किस तरह पहुंचाई जा सकती है, यह इन हाथों को मालूम है...किन्तु इससे क्या? कोई हर्ज़ नहीं!"

"पैरेमन सेमोनिच," वह एकाएक चिल्ला उठी—"क्या प्रजातन्त्र एक ऐसा साम्राज्य नहीं है, जिसमें प्रत्येक व्यक्ति अपनी इच्छानुसार कार्य कर सके?"

"प्रजातंत्र राज्य साम्राज्य नहीं है।" बैबूरिन ने अपने हाथों को ऊपर उठाकर, भौंहों को सिकोड़ते हुए, जवाब दिया—"वह एक प्रकार की सामाजिक संस्था है, जिसमें प्रत्येक बात कानून और न्याय पर अवलम्बित रहती है।"

"तब", मानसी कहने लगी—"प्रजातन्त्र राज्य में कोई व्यक्ति किसी दूसरे व्यक्ति पर अत्याचार नहीं कर सकता?"

"नहीं।"

"और प्रत्येक व्यक्ति अपनी इच्छानुसार कार्य करने को स्वतन्त्र है ?"

"पूर्ण स्वतन्त्र ।"

"आह ! यही तो मैं जानना चाहती थी ।"

"तुम क्यों जानना चाहती हो ?"

"ओह, मैं चाहती थी—मैं तुमसे यही बात कहलाना चाहती थी ।"

"हमारी यह नवयुवती नई बातें सीखने के लिए उत्सुक है ।"—पूनिन सोफे पर से बोल उठा ।

जब मैं रास्ते से होकर बाहर जाने लगा तो मानसी मेरे साथ हो ली । पर उसका ऐसा करना शिष्टाचार की दृष्टि से नहीं, बल्कि उसी धूर्ततायुक्त उद्देश्य से था । उससे विदा ग्रहण करते हुए मैंने पूछा—"क्या तुम सचमुच उसे इतना अधिक प्यार कर सकती हो ?"

"उसे मैं प्यार करती हूं या नहीं, यह मेरा काम है ।" उसने उत्तर दिया—"जो होना है, वह होकर ही रहेगा ।"

"देखो, तुम जो कुछ करना चाहती हो, उससे सावधान हो जाओ । आग के साथ मत खेलो...वह तुम्हें जला डालेगी ।"

"सर्दी से ठिठुरकर मरने की अपेक्षा जलकर मरना कहीं अच्छा है ! तुम.. अपनी नेक सलाह अपने पास ही रखो । तुम यह कैसे कह सकते हो कि वह मेरे साथ शादी नहीं करेगा ? अथवा तुम यह कैसे जानते हो कि मैं विवाह करने की विशेष इच्छा रखती हूं ? यदि मेरा सर्वनाश ही हो जाय...तो इससे तुम्हें क्या ?"

मेरे बाहर होने पर उसने दरवाजा बन्द कर दिया । मुझे

यह याद है, घर जाते हुए मैं कुछ प्रसन्नता के साथ यह सोचने लगा कि मेरा मित्र टारहोव अपनी इस नवीन ढंग की प्रेयसी को पाकर बड़ी विपत्ति में पड़ेगा.. उसे यह सुख बहुत मंहगा पड़ेगा। पर वह इसे पाकर सुखी होगा, यह बात मैं खेद-पूर्वक अनुभव कर रहा था।

इस घटना को बीते तीन दिन हो चुके थे। मैं अपने कमरे में लिखने की मेज के पास बैठा था। उस समय मैं कोई विशेष काम नहीं कर रहा था, बल्कि जलपान के लिए तैयार हो रहा था। मुझे सनसनाहट की आवाज मालूम हुई। मैंने सिर उठा कर देखा और देखते ही मेरे होश उड़ गये। मैं जड़वत् बन गया। मेरी आंखों के सामने एक कठोर, भयानक, सफेद छाया-मूर्ति खड़ी दीख पड़ी। वह पूनिन की मूर्ति थी। वह अर्द्ध निमीलित नेत्रों से मेरी ओर देख रहा था, उसकी पलकें धीरे-धीरे झपकी ले रही थीं। उसकी आंखों से निश्चेष्ट भय का भाव—वैसा ही भय, जैसा संत्रस्त खरगोश में पाया जाता है—व्यक्त हो रहा था। उसकी भुजाएं उसके दोनों बगलों में छड़ी-जैसी लटक रही थीं।

"पूनिन, तुम्हें क्या हुआ है? तुम यहां कैसे आये? क्या तुम्हें किसी ने देखा नहीं? बात क्या है? बोलो न!"

"वह भाग गई।" पूनिन ने रुद्ध कण्ठ से बहुत ही धीमी आवाज में उत्तर दिया, जो मुश्किल से सुनाई पड़ती थी।

"यह तुम क्या कहते हो?"

"वह भाग गई।"—उसने फिर दुहराया।

"कौन?"

"मानसी। वह रात में ही निकल गई और एक परचा

छोड़ गई है।"

"परचा ?"

"हां, उसने लिखा है—'मैं तुम्हें धन्यवाद देती हूं। मैं फिर वापस नहीं लौटूंगी। मेरी तलाश में न रहना।' हमने ऊपर-नीचे सब जगह छान डाली। रसोइये से पूछ-ताछ की, किन्तु उसे भी कुछ पता नहीं। मैं जोर से नहीं बोल सकता। मुझे माफ करना। मेरा गला बैठ गया है।"

"मानसी तुम्हें छोड़कर चली गई !" मैंने विस्मित होकर कहा—"बड़ी मूर्ख निकली ! मि. बैबूरिन तो अवश्य ही अत्यन्त निराश हुए होंगे। वह अब क्या करना चाहते हैं ?"

"वह कुछ भी करना नहीं चाहते। मैं गवर्नर जनरल के पास जाना चाहता था, पर उन्होंने मना कर दिया। मैं पुलिस को इसकी सूचना देना चाहता था। उन्होंने उसके लिए भी मना कर दिया और बहुत नाराज हुए। वह कहते हैं—"मानसी स्वतन्त्र है। मैं उसके किसी काम में बाधा नहीं देना चाहता।" वह इस हालत में भी अपने आफिस में काम करने गये हैं। परन्तु देखने में वह जिन्दा-जैसे नहीं, बल्कि मुर्दा मालूम पड़ते हैं। वह मानसी को बहुत ज्यादा प्यार करते थे...हा ! हम दोनों उसे कितना प्यार करते थे!"

इसी वक्त पूनिन को देखकर मुझे पहले-पहल यह मालूम हुआ कि वह लकड़ी की बनी हुई एक जड़ मूर्त्ति नहीं, बल्कि एक सजीव प्राणी है। उसने अपनी दोनों मुट्ठियों को ऊपर उठा कर अपनी खोपड़ी पर रखा, जो हाथीदांत की तरह चमक रही थी।

"कृतघ्न बालिका !" उसने आह-भरी आवाज में चिल्ला

कर कहा—"किसने तुम्हें खिलाया पिलाया-उढ़ाया-पहनाया और पाल-पोसकर बड़ा किया ? किसने तुम्हारे लिए चिन्ता की और अपना सारा तन-मन प्राण तुमपर न्योछावर कर दिया...और तुमने इन सारी बातों को भुला दिया ! यदि तुम मुझे छोड़ देतीं तो सचमुच वह कोई बड़ी बात न होती, पर पैरेमन सेमोनिच को, पैरेमन..."

मैंने पूनिन से बैठ जाने और आराम करने की प्रार्थना की।

पूनिन ने अपना सिर हिलाया—"नहीं, मैं नहीं बैठूंगा। मैं तुम्हारे पास आया हूं...मैं नहीं जानता, किसलिए। मैं विक्षिप्त-सा हो रहा हूं। घर पर अकेले बैठे रहना भयानक जान पड़ता है। मैं अपनेको क्या करूं ? मैं कमरे के बीच खड़ा होकर अपनी आंखों को मूंद लेता हूं और "मानसी !" नाम लेकर पुकारता हूं। पागल होने का यही तरीका है। मगर नहीं, मैं व्यर्थ की बातें क्यों बक रहा हूं ? मुझे मालूम है कि मैं तुम्हारे पास किसलिए आया हूं। तुमको याद होगा कि उस दिन तुमने मुझे वह महा निकृष्ट कविता पढ़कर सुनाई थी. तुम्हें यह भी स्मरण होगा कि उसमें एक वृद्ध पति का जिक्र आया है। तुमने ऐसा क्यों किया था ? क्या तुम्हें उस समय कुछ मालूम हुआ था...या तुमने कुछ अनुमान किया था ?" पूनिन ने मेरी ओर दृष्टिपात किया—"पिओटर पिट्रोविच।" वह एका-एक चिल्ला उठा और उसका सारा शरीर कांपने लगा—"तुम शायद जानते हो कि वह कहां है ? मेरे सहृदय मित्र, मुझे बताओ, वह किसके पास गई है ?"

मैं घबरा गया और मेरी आंखें नीचे की ओर झुक गईं।

"शायद अपनी चिट्ठी में उसने कुछ लिखा हो।" मैंने कहना

शुरू किया।

"उसने लिखा है कि मैं आप लोगों को छोड़कर जा रही हूं, क्योंकि मैं किसी और ही व्यक्ति से प्रेम करती हूं। मेरे प्यारे नेक दोस्त, तुम यह जरूर जानते हो कि वह कहां है? उसे बचाओ, हम लोगों को वहां ले चलो। हम उसे वापस लौट आने के लिए कहेंगे। जरा सोचो तो कि वह कैसे व्यक्ति का सर्वनाश कर रही है!"

पूनिन का चेहरा एकदम लाल हो उठा। ऐसा मालूम पड़ता था, मानों उसके सिर में खून दौड़ गया हो। वह धम-से घुटनों के बल गिर पड़ा। "मित्र हमें बचाओ। हमें वहां ले चलो।"

मेरा नौकर दरवाजे पर आया और चकित होकर चुपचाप खड़ा-खड़ा यह सब दृश्य देखता रहा।

मैंने बड़ी मुश्किल से पूनिन को उठाकर खड़ा किया और उसे यह विश्वास दिलाया कि अगर इस सम्बन्ध में मुझे किसी के प्रति कुछ सन्देह भी हो तो फौरन उसी दम और खासकर दोनों साथ मिलकर कुछ नहीं कर सकते, क्योंकि इससे हमारे सारे प्रयत्न निष्फल हो जायंगे। मैंने उसे यह भी विश्वास दिलाया कि इस मामले में भरसक प्रयत्न करने के लिए मैं तैयार हूं, मगर किसी बात के लिए जवाबदेह नहीं होऊंगा। पूनिन ने मेरा विरोध नहीं किया और असल में मेरी बातों को उसने सुना भी नहीं। वह सिर्फ समय-समय पर कातर स्वर में दुहराता रहा, "उसे बचाओ, उसे और बैबूरिन को बचाओ।" आखिर वह रो पड़ा। "कम-से-कम एक बात तो बताओ।" उसने पूछा— "क्या वह सुन्दर है? नवयुवक है?"

"हां, वह नवयुवक है।" मैंने उत्तर दिया।

"वह नवयुवक है।" पूनिन ने इस वाक्य को अपने गालों के आंसू पोंछते हुए दुहराया—"और यह युवती नई...बस, इसी से यह व्याधि खड़ी भई !"

उसके मुंह से यह छन्द-बद्ध वाक्य संयोग से निकल पड़ा, क्योंकि बेचारे पूनिन की प्रवृत्ति उस समय छन्द-रचना की ओर थोड़े ही थी। मैं एक बार फिर उसके असंबद्ध वाक्य-प्रवाह अथवा उसके मूक हास्य को ही सुनने के लिए बहुत-कुछ न्योछावर कर देता किन्तु हाय ! उसकी वह वक्तृत्वशक्ति सदा के लिए विलीन हो गई और फिर मुझे उसका वह हास्य कभी सुनाई नहीं दिया।

मैंने उससे वादा किया कि ज्योंही मुझे कोई बात निश्चित रूप में मालूम होगी, मैं उसे सूचित कर दूंगा। टारहोव के नाम का मैंने कोई जिक्र नहीं किया। पूनिन एकाएक बिलकुल निस्तब्ध हो गया। "बहुत अच्छा, बहुत अच्छा, महाशय, आपको धन्यवाद।"

उसने करुणोत्पादक मुख से कहा और 'महाशय' शब्द का व्यवहार किया, जैसा उसने पहले कभी नहीं किया था—"सिर्फ एक बात का ध्यान रखना। पैरेमन सेमोनिच से कुछ भी न कहना, नहीं तो वह नाराज हो जायगा। सारांश यह कि उसने इस विषय की चर्चा की बिल्कुल मनाही कर दी है। अच्छा, महाशय, अब विदा होता हूं।"

ज्योंहीं वह उठा और अपनी पीठ को मेरी ओर घुमाया, मुझे यह देखकर बड़ा आश्चर्य हुआ कि वह कितना दीन एवं दुर्बल हो गया है। वह दोनों पांवों से लंगड़ाकर चलता था और हरेक पग पर घूम जाता था।

"यह बुरा लक्षण है। इसका अर्थ यह है कि इसका अन्त निकट है।"—मैंने सोचा।

यद्यपि मैंने पूनिन से वादा किया था कि मैं मानसी का पता लगाऊंगा और अगस्त मैं उसी दिन टारहोव के यहां जाने के लिए चल पड़ा, तथापि मुझे किसी बात का पता चलने की तनिक भी उम्मीद नहीं थी, क्योंकि मुझे यह निश्चय था कि या तो वह मुझे अपने घर पर मौजूद नहीं होगा और हुआ भी तो वह मुझसे मिलने से इन्कार कर देगा। मेरा यह अनुमान गलत निकला। मैंने टारहोव को घर पर मौजूद पाया। वह मुझसे मिला और जो कुछ जानना चाहता था, वह सब मैंने जान लिया, लेकिन उससे कोई फायदा नहीं हुआ। ज्योंही मैंने उसके दरवाजे के चौखट को पार किया, टारहोव को दृढ़तापूर्वक तेजी के साथ मुझसे मिलने आया। उस समय उसकी आंखें चमक रही थीं और उनसे ज्योति निकल रही थी। उसका चेहरा बहुत ही मनोहर और कान्तिपूर्ण बन गया था। उसने दृढ़ता के साथ फुर्ती से कहा—"सुनो, पेट्या, मेरे मित्र, तुम जिस काम से आये हो और तुम जो कुछ कहना चाहते हो, वह मैं समझता हूं। मगर मैं तुम्हें सावधान किये देता हूं कि अगर तुम मानसी के विषय में या उसके कार्य के सम्बन्ध में, अथवा जिस मार्ग को मैंने अपनी सहज-बुद्धि के अनुसार ग्रहण किया है, उस विषय में एक शब्द भी कहोगे तो फिर हम दोनों मित्र के रूप में नहीं रहेंगे। हम दोनों परिचित के रूप में भी नहीं रह जायंगे और तब मैं तुमसे कहूंगा कि मेरे साथ एक अपरिचित व्यक्ति-जैसा व्यवहार करो।"

मैंने टारहोव पर दृष्टि डाली। वह भीतर से इस तरह कांप रहा था, मानो सितार का तार कसकर खींचा

गया हो। उसके सम्पूर्ण शरीर में झनझनाहट-जैसी आवाज हो रही थी। वह बड़ी मुश्किल से अपने यौवन के उच्छ्वास एवं आवेश को दबाकर रख सकता था। आनन्दातिरेक के कारण वह आत्म-विभोर हो गया था—उसकी आत्मा आनन्दसागर में तल्लीन हो गई थी।

"क्या यह तुम्हारा अन्तिम निश्चय है ?" मैंने खेदपूर्वक पूछा।

"हां, पेट्या, मेरे मित्र, यह मेरा अन्तिम निश्चय है।"

"ऐसी हालत में मेरे लिए तुमसे विदा मांगने के सिवा और कुछ कहना नहीं है।"

टारहोव ने धीरे-से अपनी पलकों को नीचा कर लिया। उस समय वह मारे आनन्द के फूला नहीं समाता था।

"अच्छा, पेट्या, विदा!" उसने कुछ-कुछ नाक से बोलते और मुस्कराते हुए तथा अपने सफेद दांतों को दिखलाते हुए कहा।

मैं अब क्या करता ! मैंने उसे आनन्दोपभोग करने के लिए छोड़ दिया। ज्योंही मैंने बाहर निकलकर दरवाजा बन्द किया, कमरे का दूसरा दरवाजा भी बन्द हो गया—इसे मैंने खुद अपने कानों से सुना।

दूसरे दिन मैं भरे हुए दिल से, पांव घसीटता हुआ, अपने अभागे परिचितों से मिलने के लिए उनके स्थान पर गया।

मैं मन-ही-मन यह आशा कर रहा था—मानव-प्रकृति की यह दुर्बलता है—कि वे मुझे अपने घर पर नहीं मिलेंगे, किन्तु इस बार भी मैंने धोखा खाया। दोनों घर पर ही मौजूद थे। तीन दिनों के अन्दर उन लोगों में जो परिवर्तन हो चुका था, वह

किसी भी व्यक्ति को खटके बिना नहीं रह सकता था। पूनिन का चेहरा प्रेत-जैसा सफेद और मैला-कुचैला दीख पड़ता था। वह पहले-जैसा बातूनी अब बिल्कुल नहीं रह गया था। वह लापरवाही के साथ धीरे-धीरे पहले-जैसे ही अस्फुट स्वर में बोला और कुछ घबराया-सा मालूम पड़ने लगा। उधर बैबूरिन संकोचशील, सिकुड़ा हुआ-सा जान पड़ता था और इतना काला हो गया था, जितना पहले कभी नहीं था। वैसे तो अच्छे-से-अच्छे मौके पर भी वह मौन रहता था, पर वह अब कभी-कभी कुछ शब्द उच्चारण करने के सिवा और कुछ नहीं बोलता था। उसके चेहरे पर पत्थर-जैसी कठोरता का भाव जमा हुआ-सा मालूम पड़ता था।

मेरे लिए चुप रहना असम्भव हो गया, पर मैं कहता भी तो क्या? मैंने पूनिन के कान में चुपके-से कहा--"मुझे कुछ भी पता नहीं चला और मैं तुम्हें यही सलाह दूंगा कि उसकी कुछ भी आशा न रखो।"

पूनिन ने अपनी छोटी-छोटी फूली हुई लाल आंखों से--उसके चेहरे में सिर्फ यही लाली रह गई थी--मेरी ओर देखा और अस्फुट स्वर में कुछ बड़बड़ाया। फिर इसके बाद वहां से लंगड़ाता हुआ चला गया। मैं पूनिन से जो कुछ कह रहा था, उसे शायद बैबूरिन अनुमान से ताड़ गया और अपने बन्द होठों को--जो इस कदर कसकर बन्द थे, मानो लेई से आपस में सटे हुए हों--खोलते हुए सावधान स्वर में कहा, "महाशय, पिछली दफा जब आप हम लोगों से मिलने आये थे, उसके बाद हम लोगों के यहां एक अप्रिय घटना हो गई है। हम लोगों की नवयुवती मित्र मानसी ने हमारे साथ रहना असुविधाजनक समझकर हमें छोड़ देने का

निश्चय किया है और इस सम्बन्ध में उसने हमें लिखित सूचना दे दी है। यह विचारकर कि हमें उसके ऐसा करने के इरादे में रुकावट डालने का कोई हक नहीं है, हम लोगों ने उसे अपने विचारानुसार जैसा वह सर्वोत्तम समझे, वैसा करने के लिए स्वतन्त्र छोड़ दिया है। हमें विश्वास है कि वह सुखी होगी।" अन्तिम वाक्य जोड़ते हुए उसने कुछ प्रयत्न के साथ कहा—"और मैं आपसे प्रार्थना करता हूं कि इस विषय का अब कोई जिक्र न कीजिये, क्योंकि इस प्रकार की चर्चा व्यर्थ है और कष्ट-प्रद भी।"

"सो यह भी टारहोव के समान ही मुझे मानसी के सम्बन्ध में कुछ बोलने से मना करता है।" यही विचार मेरे मन में उदित हुआ और मन-ही-मन मैं इसपर आश्चर्य किये बिना न रह सका। तभी तो बैबूरिन जीनो की इतनी ज्यादा कद्र करता है। मेरी इच्छा हुई कि उस तत्वज्ञानी के सम्बन्ध में कुछ बातें उसे बता दूं, पर मेरी ज़बान से कोई बात ही न निकली और यह अच्छा ही हुआ।

फिर मैं जल्द ही वहां से अपने काम पर चला गया। विदा होते समय न तो पूनिन ने और न बैबूरिन ने ही फिरसे मिलने की बात कही। दोनों ने एक ही शब्द का उच्चारण किया—"विदा!"

पूनिन ने 'टेलीग्राफ' पुस्तक—जिसे मैंने उसे ला दिया था—मुझे लौटा दी, मानो यह कहते हुए कि "मुझे अब ऐसी किसी चीज़ की दरकार नहीं है।"

इसके एक सप्ताह बाद एक विचित्र घटना हुई। वसन्त ऋतु का सहसा आरम्भ हो चुका था। दोपहर में अठारह डिगरी तक गरमी पहुंच चुकी थी। पृथ्वी पर चारों ओर हरियाली-ही-हरि-

याली नजर आ रही थी। मैंने भाड़े पर एक टट्टू लिया और उसपर सवार होकर शहर के बाहर पहाड़ की तरफ़ सैर के लिए निकल पड़ा। सड़क पर मुझे एक छोटी गाड़ी दिखाई पड़ी, जिसमें एक जोड़ तेज़ घोड़े जुते हुए थे। उनके कानों तक कीचड़ भरा था, पूंछे गुथी हुई थीं और गरदन तथा आगे के बालों में लाल रंग के रेशमी कपड़े लिपटे हुए थे। उनका साज शिकारियों के घोड़ों जैसा था। तांबे का मंडल और झब्बे लटक रहे थे। एक चुस्त युवक कोचवान बिना आस्तीन का नीले रंग का कोट, पीले रंग की धारीदार रेशमी कमीज और मयूर के पंखों से सजी हुई एक फेल्ट टोपी पहने हुए उन घोड़ों को हांक रहा था। उसकी बगल में शिल्पकार या वणिक श्रेणी की एक लड़की फूलदार रेशमी जाकेट पहने और बड़ा-सा लम्बा रूमाल सिर में लपेटे बैठी थी। वह खुशी के मारे उछल रही थी। कोचवान भी हँस रहा था। मैंने अपने टट्टू को एक तरफ कर लिया और तेजी से जाती हुई उस प्रसन्न जुगल जोड़ी की ओर विशेष ध्यान नहीं दिया। इतने में हठात उस युवक ने घोड़े को आवाज दी।...

तब मुझे पता लगा--अरे, यह तो टारहोव की जैसी आवाज मालूम होती है। मैं इधर-उधर देखने लगा। हां, वह टारहोव ही था—अवश्य वही था। किसानों की पोशाक पहने था और उसकी बगल में मानसी के सिवा और कौन हो सकती थी?

किन्तु उसी क्षण उनके घोड़ों ने अपनी चाल तेज़ की और एक मिनट के अन्दर ही वे दृष्टि से ओझल हो गये। मैंने उनके पीछे टट्टू दौड़ाकर ले जाने की कोशिश की, किन्तु मेरा टट्टू बूढ़ा था, जो चलते समय एक ओर से दूसरी ओर मटककर चलता था, और यों अपनी चाल से चलने की अपेक्षा दौड़ाकर ले जाने में वह

और भी सुस्त हो जाता था।

"प्यारे दोस्त! खूब जी-भरकर मौज कर लो?"—मैंने धीरे-से बड़बड़ाकर कहा।

यहांपर मुझे यह भी बता देना चाहिए कि इस पूरे हफ्ते में मैंने टारहोव को नहीं देखा था, यद्यपि मैं तीन बार उसके कमरे में गया। वह घर पर कभी नहीं रहता था। बैबूरिन और पूनिन इन दोनों में किसीसे भी मेरी मुलाकात नहीं हुई। मैं उन लोगों से मिलने भी नहीं गया।

टट्टू पर सवार होकर बाहर जाने में मुझे सर्दी लग गई थी। यद्यपि मौसम बहुत गर्म था, तथापि हवा चुभती हुई-सी चल रही थी। मैं बहुत बीमार हो गया और जब चंगा हुआ तो अपनी दादी के साथ, डाक्टर की सलाह से, स्वास्थ्य लाभ करने के लिए देहात चला गया। फिर मैं मास्को नहीं आया। शरद ऋतु में मैं पीटर्सबर्ग-विश्वविद्यालय में भर्ती हो गया।

: ३ :

१८४६

सात नहीं, बल्कि पूरे बारह वर्ष बीत गये थे और मैंने अपने जीवन के बत्तीसवें वर्ष में पदार्पण किया था। मेरी दादी को मरे बहुत दिन हो गये थे। मैं पीटर्सबर्ग-स्वराष्ट्र-विभाग के एक पद पर काम करता था। टारहोव मेरी दृष्टि से दूर हो गया था। वह फ़ौज में भर्ती होकर चला गया था और प्रायः हमेशा प्रान्तों में ही रहा करता था। हम दोनों में दो बार मुलाकात हो चुकी थी और पुराने दोस्त के रूप में एक दूसरे को देखकर प्रसन्न भी हुए थे, पर बातचीत में पुरानी बातों का ज़िक्र नहीं आया। आखिरी बार जब हम दोनों मिले थे, उस समय वह—यदि मुझे ठीक स्मरण है—

एक विवाहित पुरुष बन चुका था।

गरमी के मौसम में, एक दिन जब हवा बिल्कुल बन्द थी, मैं गोरोहोव स्ट्रीट में योंही चक्कर लगा रहा था और अपने दफ्तर के कामों को कोस रहा था, जिसके कारण मुझे पीटर्सबर्ग में और शहर की गरमी, दुर्गन्ध और धूल में रहना पड़ता था, मार्ग में मुझे एक मुर्दा मिला। वह एक टूटी-फूटी मुर्दा ढोनेवाली गाड़ी पर रखा हुआ था, जिसपर लकड़ी की एक पुरानी ताबूत फटे-पुराने काले कपड़े से आधी ढंकी हुई थी। ऊबड़-खाबड़ मार्ग पर चलने के कारण गाड़ी में जोर-जोर से जो झटका लगता जाता था, उससे वह ताबूत भी ऊपर-नीचे हिल-डुल रहा था। उस गाड़ी के साथ गंजे सिरवाला एक बूढ़ा आदमी जा रहा था।

मैंने उसकी ओर देखा। उसका चेहरा परिचित-सा मालूम पड़ा। उसने भी अपनी आंखें मेरी ओर कीं.. अरे, यह तो बैबूरिन था।

मैंने अपनी टोपी उतार ली, उसके पास गया, अपना नाम बतलाया और उसके साथ-साथ चलने लगा।

"आप किसे दफनाने जा रहे हैं?"—मैंने पूछा।

उसने कहा—"निकेंडर विवेलिच पूनिन को!"

मुझे यह पहले ही अनुमान हो गया था कि वह इसी नाम का उच्चारण करेगा, पर फिर भी उसके मुंहसे यह नाम सुनकर मेरा हृदय दुःखित हो उठा। दिल बैठ गया। पर मुझे इस बात की खुशी अवश्य थी कि मुझे अपने एक पुराने दोस्त के प्रति अन्तिम सम्मान प्रदर्शित करने का संयोग मिल गया।

"क्या मैं आपके साथ चल सकता हूं, पैरामन सेमोनिच?"

"जैसी आपकी मर्जी! मैं इसके पीछे-पीछे अकेला ही जा रहा

था। अब हम दो हो जायंगे।"

एक घंटे से अधिक हम लोग चलते रहे। मेरा साथी आगे-आगे चल रहा था। चलते समय न तो उसकी आंखें ऊपर की ओर उठती थीं और न उसकी ज़बान ही हिलती थी। अन्तिम बार जब मैंने उसे देखा था, तबसे अब वह बिल्कुल बुड्ढा हो गया था। उसके लाल चेहरे पर झुर्रियां पड़ गई थीं और उसके बाल सफेद हो गये थे। बैबूरिन को अपने जीवन में बराबर कठिनाइयों का सामना करना पड़ा था, परिश्रम और दुःख झेलने पड़े थे, जिनके चिह्न उसकी सम्पूर्ण आकृति से साफ दीख रहे थे। मुहताजी और गरीबी उसके जीवन के साथ बड़ी बेहरमी से पेश आई थीं।

अन्त्येष्टि-क्रिया समाप्त होने और पूनिन का नश्वर शरीर सदा के लिए भूमिसात् हो जाने के बाद बैबूरिन दो मिनट तक उस नवनिर्मित मिट्टी के स्तूप के निकट खुले सिर और नतमस्तक खड़ा रहा, फिर उसने अपने क्षीण एवं विकृत चेहरे और शुष्क बैठी हुई आंखें मेरी ओर करके मुझे गम्भीरतापूर्वक धन्यवाद दिया। इसके उपरान्त वह वहां से चलने के लिए तैयार हुआ, पर मैंने उसे रोक रखा।

"आप इस समय कहां रहते हैं, पैरामन सेमोनिच? मैं आपके घर आकर मिलना चाहता हूं। मुझे इस बात का बिल्कुल ख्याल नहीं था कि आप पीटर्सबर्ग में रहते हैं। हम दोनों अपने पुराने दिनों की याद कर सकते हैं और अपने पुराने दोस्त की चर्चा भी कर सकते हैं।"

बैबूरिन ने तत्काल मुझे जवाब नहीं दिया।

"मुझे पीटर्सबर्ग आये हुए दो वर्ष हो गये।" आखिर उस-

ने कहा—"मैं शहर के अन्तिम भाग में रहता हूं, पर यदि तुम सचमुच मेरा घर देखना चाहते हो तो आना।"

उसने अपना पता-ठिकाना मुझे देते हुए कहा—"शाम को आना। उस समय हम बराबर घर पर ही रहते हैं...हम दोनों ही रहते हैं।"

"आप दोनों कौन ?"

"मैं विवाहित हूं। मेरी पत्नी आज कुछ अस्वस्थ है। इसी-लिए वह नहीं आई। इस निरर्थक रस्म को पूरा करने के लिए एक आदमी ही काफी है। इन बातों पर विश्वास ही कौन करता है ?"

मुझे बैबूरिन के अन्तिम शब्दों पर कुछ आश्चर्य हुआ, पर मैंने कुछ भी न कहा। फिर एक गाड़ीवाले को बुलाया और बैबूरिन से उसपर सवार होकर उसके घर चलने के लिए कहा, पर उसने अस्वीकार कर दिया।

उसी दिन संध्या को मैं उससे मिलने गया। मार्ग में मैं बराबर पूनिन के सम्बन्ध में ही सोचता रहा। मुझे उस समय की याद आ गई, जब मैं पहले-पहल उससे मिला था। उन दिनों वह कितना उल्लासपूर्ण और प्रसन्न-चित्त जान पड़ता था। फिर इसके बाद मास्को आकर वह कितना संयमशील बन गया था—खासकर अन्तिम बार जब मैंने उसे देखा था, और अब तो वह अपने जीवन से आखिरी हिसाब-किताब कर चुका था। इससे तो यही मालूम पड़ता है कि जीवन अपना पावना पाई-पाई चुका लेने के लिए उतारू हो जाता है। बैबूरिन विबोर्गस्की मुहल्ले के एक छोटे-से घर में रहा करता था। इस मकान को देखकर मुझे उसकी मास्को की झोंपड़ी की याद आ गई।

पीटर्सबर्ग में वह जिस मकान में रहता था, वह उससे भी अधिक भद्दा मालूम पड़ा।

जब मैं उसके कमरे में दाखिल हुआ, वह एक कोने में अपने हाथों को घुटनों पर रखे एक कुरसी पर बैठा था। एक मोमबत्ती मन्द ज्योति से जल रही थी और उसका झुका हुआ सफेद सिर कुछ-कुछ प्रकाशित हो रहा था। उसने मेरे कदमों की आहट सुनी, चौंककर उठ खड़ा हुआ और मेरा इस रूप में हार्दिक स्वागत किया, जिसकी मुझे आशा न थी। कुछ मिनटों के बाद उसकी स्त्री भी वहां आ गई। मैंने फौरन पहचान लिया कि वह मानसी थी—और तब यह बात मेरी समझ में आई कि बैबूरिन ने क्यों मुझे अपने घर आने के लिए आमंत्रित किया था। वह मुझे यह दिखाना चाहता था कि आखिर उसकी चीज़ उसे मिल गई। मानसी में बहुत परिवर्तन हो गया था, उसका चेहरा, उसका स्वर, उसके तौर-तरीके—सबकुछ बदले हुए से मालूम होते थे, पर सबसे बड़ा परिवर्तन जो हुआ था, वह उसकी आंखों में। पहले ऐसा मालूम पड़ता था, मानों वे द्रोह-पूर्ण सुन्दर आंखें जीवन्तरूप में नयनवाण चलाती हों; वे आंखें चुपके-से चमक उठती थीं और उनकी वह चमक चकाचौंध पैदा करनेवाली होती थी, उनके कटाक्षपात चुभते-से हुआ करते थे, किन्तु अब वे ही आंखें किसी वस्तु को सरल, शान्त एवं स्थिर भाव से देखा करती थीं। उनकी पुतलियों में पहले जैसी कान्ति अब नहीं रह गई थी। उसकी कोमल एवं शिथिल दृष्टि से ऐसा मालूम पड़ता था, मानों कह रही हो—"मैं अब पालतू बन गई हूं। मैं अब भलीमानस हूं।" उसकी अनवरत विनीत मुस्कराहट से भी यही भाव झलक रहा था। उसके कपडे भी इसी भाव के

द्योतक थे—भूरा रंग और उसपर छोटे-छोटे छींटे। वह मेरे पास आई और मुझसे बोली—"क्या आप मुझे पहचानते हैं?" उसके इस प्रकार पूछने में कुछ भी झिझक नहीं मालूम पड़ती थी, पर इसका कारण यह नहीं था कि उस में लज्जा-भाव नहीं रह गया था, या कि अतीत काल की उसकी स्मृति नष्ट हो चुकी थी, बल्कि इसका कारण यह था कि उसका क्षुद्र अहंभाव अब बिल्कुल नष्ट हो चुका था।

मानसी ने पूनिन के विषय में बहुत-कुछ बातें कीं। वह एक-समान स्वर में बात-चीत करती थी और उसके उस स्वर में भी अब पहले जैसा तेज नहीं रह गया था। मुझे उससे मालूम हुआ कि पूनिन अन्तिम कई वर्षों में बहुत कमजोर हो गया था और उसकी प्रकृति बालक जैसी हो गई थी। उसकी यह प्रकृति इस सीमा तक पहुंच गई थी कि यदि उसे खेलने के लिए खिलौने नहीं मिलते थे तो वह अत्यन्त दुःखित हो उठता था। लोग तो यही कहा करते थे कि वह रद्दी चीजों से खिलौने बनाकर बेचा करता है, मगर असल में बात यह थी कि वह उन खिलौनों से खुद खेला करता था। कविता के लिए उसके हृदय में जो व्यसन था, वह अन्त तक उसमें कायम रहा और उसे अगर कोई बात याद थी तो वह सिर्फ कविता ही थी। मृत्यु से कई दिन पूर्व उसने रोसिएड की कुछ पंक्तियां पढ़कर सुनाई थीं। पर पुश्किन से वह उसी तरह डरा करता था, जिस तरह बच्चे हौआ से डरा करते हैं। बैबूरिन के प्रति उसकी जो अनुरक्ति थी, वह अन्त तक एक समान बनी रही। बराबर एकरूप में उसकी पूजा करता रहा और अन्त काल में भी जब कि वह मृत्यु के अन्धकारपूर्ण आवरण से आच्छादित हो रहा था,

उसने कांपती हुई जबान में 'उपकारकर्त्ता' शब्द का उच्चारण किया था। मुझे मानसी से यह भी मालूम हुआ कि मास्को की घटना के बाद भी बैबूरिन को दुर्भाग्यवश एक बार फिर सारे रूस की खाक छाननी पड़ी थी और वह लगातार एक काम से दूसरे काम पर मारा-मारा फिरता रहा। पीटर्सबर्ग में ही उसे फिर एक प्राइवेट नौकरी मिल गई थी, पर अपने मालिक से कुछ अनबन हो जाने के कारण कई दिन पहले उसने मजबूर होकर वह काम भी छोड़ दिया था। वजह यह थी कि बैबूरिन ने मजदूरों का पक्ष लेने का साहस दिखलाया था।

मानसी के शब्दों के साथ जो मुसकराहट बनी रहती थी, उससे चिन्तित होकर मैं सोच में पड़ गया था। उसके पति की आकृति को देखकर मेरे हृदय में जो भावना उत्पन्न हुई थी, उसे उसकी मुस्कराहट ने बिल्कुल पक्का कर दिया था। उन दोनों को किसी प्रकार अपनी जीविकामात्र चलाने के लिए भी कठिन परिश्रम करना पड़ता था, इसमें तो कोई शक ही नहीं था। हम लोगों के वार्तालाप में बैबूरिन ने बहुत थोड़ा भाग लिया। वह जितना दुःखित जान पड़ता था, उससे कहीं अधिक व्यस्त मालूम पड़ता था। ऐसा प्रतीत होता था, मानों कोई चिन्ता उसे सता रही हो।

'पैरोमन सेमोनिच, यहां आओ।"—रसोइए ने एकाएक दरवाजे पर हाजिर होकर कहा।

"क्यों, क्या है? क्या चाहिए?" उसने सशंकित होकर पूछा।

"यहां तो आओ।" रसोइए ने फिर जोर देते हुए अपनी बातों को दुहराया। बैबूरिन ने अपने कोट का बटन लगाया और वहां से बाहर चला गया।

जब मैं वहां मानसी के साथ अकेला रह गया तो उसने मेरी तरफ कुछ-कुछ बदली हुई दृष्टि से देखा और बदले हुए स्वर में बिना मुस्कराहट के कहा—"पीटर पेट्रोविच, मैं नहीं जानती कि तुम अब मेरे बारे में क्या सोचते हो, पर इतना मैं अवश्य कहूंगी कि तुम्हें याद होगा कि मैं पहले क्या थी। उस समय मैं अत्याभिमानी और क्षुद्रहृदया थी। भली मानस नहीं थी। मैं सिर्फ अपने सुख के लिए जीना चाहती थी, पर मैं तुम्हें यह बता देना चाहती हूं कि जब मैं परित्यक्ता होकर इधर-उधर मारी-मारी फिर रही थी और मृत्यु की बाट जोह रही थी, या अपने इस जीवन का अन्त कर डालने के लिए अपने दिल में हिम्मत लाने की चेष्टा कर रही थी, ऐसे समय में एक बार फिर मेरी मुलाकात पहले की तरह पैरोमन सेमोनिच से हुई, और उसने मुझे फिर बचा लिया। उसके मुंह से ऐसा एक शब्द भी नहीं निकला, जो मेरे दिल पर चोट पहुंचा वे--निन्दा का या उलहने का—एक शब्द भी नहीं। उसने मुझसे कुछ पूछा तक नहीं। मैं इस उदारता-पूर्ण व्यवहार के योग्य नहीं थी, पर उसने मुझे प्यार किया और मैं उसकी पत्नी बन गई। मैं करती भी क्या ? मैं मरने में भी सफल न हुई थी और अपने इच्छानुसार जी भी नहीं सकती थी। ऐसी हालत में मैं क्या करती ? जो हो, उसकी यह दया ही थी, जिसके लिए मुझे कृतज्ञ होना चाहिए। बस, यह मेरी रामकहानी है।"

इतना कहकर वह चुप हो गई और एक क्षण के लिए मेरी ओर से उसने मुंह फेर लिया। इस समय भी उसके होठों पर विनीत मुस्कराहट खेल रही थी। "मेरा यह जीवन सुखकर है या नहीं, यह सवाल पूछने की जरूरत नहीं।" मुझे उसकी

मुस्कराहट में यही अर्थ छिपा हुआ जान पड़ा।

इसके बाद हम दोनों की बातचीत साधारण विषयों पर होने लगी। मानसी ने मुझसे कहा कि पूनिन एक बिल्ली भी छोड़ गया है, जिसे वह बहुत चाहता था। उसके मरने के बाद से वह बिल्ली छत के ऊपर के कमरे में चली गई है और वहीं रहा करती है और बराबर 'म्याऊं-म्याऊं' करती रहती है, मानों वह किसी-को पुकार रही हो। पड़ोस के लोग उससे बहुत डरते हैं और यह खयाल करते हैं कि पूनिन की आत्मा बिल्ली के रूप में प्रकट हुई है।

"पैरोमन सेमोनिच किसी विषय को लेकर चिन्तित से मालूम पड़ते थे।"—मैंने कहा।

"आह! तुमने यह बात आखिर ताड़ ली?"—मानसी ने एक लम्बी सांस ली--"चिन्तित होना उनके लिए अनिवार्य है। मुझे तुम्हें यह बताने की जरूरत नहीं कि पैरोमन सेमोनिच अब तक अपने सिद्धान्तों पर स्थिर हैं। इस समय जो देश की दशा है, उससे तो उनके सिद्धान्तों की और भी अधिक पुष्टि होती है।" (पुराने जमाने में जब वह मास्को में रहा करती थी, उस समय से अब के उसके कहने के ढंग में विभिन्नता थी। उसके वाक्यों में एक प्रकार की साहित्यिक अभिरुचि-सी जान पड़ी थी) यद्यपि मैं यह नहीं जानती कि मैं आपपर विश्वास कर सकती हूं या नहीं, और आप मेरी बातों को किस रूप में सुनेंगे।"

"आप यह क्यों ख्याल करती हैं कि आप मुझपर विश्वास नहीं कर सकतीं?"

"इसलिए कि आप सरकारी नौकर हैं। एक अधिकारी भी हैं।"

"तो, इससे क्या ?"

"इसका यह अर्थ है कि आप राजभक्त हैं।"

मानसी की इस सरलता पर मैं अपने मन में विस्मय करने लगा। मैंने कहा—"जो सरकार मेरे अस्तित्व तक से अवगत नहीं है, उसके प्रति मेरा क्या रुख है, इस सम्बन्ध में मैं आपसे क्या कहूं ! पर आप अपने मन में निश्चिन्त रहिये। मैं आपके साथ विश्वासघात नहीं करूंगा। जितना आप कल्पना करती हैं, उससे कहीं अधिक मैं आपके पति की भावनाओं के प्रति सहानुभूति रखता हूं।"

मानसी ने अपना सिर हिलाया।

"हां, आप ठीक कहते हैं"—उसने कुछ हिचकिचाहट के साथ कहना शुरू किया—"किन्तु देखिये, बात दरअसल यह है कि पैरोमन सेमोनिच की भावनाओं के शीघ्र ही कार्यरूप में परिणत होने की सम्भावना है। वे अब छिपाकर नहीं रक्खी जा सकतीं। हमारे ऐसे अनेक साथी हैं, जिनका अब हम परित्याग नहीं कर सकते।"—मानसी ने एकाएक इस तरह बोलना बन्द कर दिया, मानों उसने अपनी जबान काट ली हो। उसके अन्तिम शब्दों को सुनकर मैं चकित और कुछ-कुछ भयभीत-सा हो उठा। शायद उस समय का मेरा आन्तरिक भाव मेरे चेहरे से व्यक्त हो रहा था और मानसी मेरे इस भाव को ताड़ गई थी।

जैसा कि मैं ऊपर कह चुका हूं, हम दोनों की बातचीत सन् १८४९ में हुई थी। बहुत-से लोगों को अब भी याद है कि वह जमाना कितना विपत्तिपूर्ण और कठिन था और सेंट पीटर्सबर्ग में किन घटनाओं द्वारा उसका निदर्शन हुआ था। बैबूरिन के चाल-चलन में, उसके सम्पूर्ण हाव-भाव में, जो कुछ विलक्षणताएं

मालूम पड़ती थीं, उनसे मैं खुद विस्मित हो रहा था। उसने एक बार नहीं, बल्कि दो बार सरकारी कार्रवाई के सम्बन्ध में तथा उच्च अधिकारियों के बारे में इतनी घोर कटुता एवं घृणा से जिक्र किया था कि मैं हक्का-बक्का-सा हो गया था। एक दिन अकस्मात बैबूरिन ने मुझसे पूछा था।

"अजी, यह तो बताइये कि आपने अपने किसानों को स्वतन्त्र कर दिया या नहीं ?"

मुझे बाध्य होकर यह बात स्वीकार करनी पड़ी कि मैंने अभी तक नहीं किया।

"क्यों ? मैं समझता हूं, तुम्हारी दादी मर चुकी है ?"

मुझे मजबूर होकर यह भी स्वीकार करना पड़ा।

"यह बिल्कुल ठीक है कि आप रईस लोग"—बैबूरिन ने धीरे-से बड़बड़ाते हुए कहा, "दूसरों के हाथों से अपना मतलब निकालना, अपना उल्लू सीधा करना, खूब जानते हैं।"

उसके कमरे के सबसे स्पष्ट स्थान में वेलिन्स्की का सुप्रसिद्ध रेखाचित्र टंगा हुआ था, मेज पर बैस्टूजेब द्वारा सम्पादित पोलर स्टार, नामक पत्र की एक पुरानी जिल्द रक्खी थी।

रसोइए के पुकारने पर बैबूरिन बाहर चला गया था। उसके बाद बहुत समय बीत जाने पर भी वह वापस नहीं लौटा। मानसी कुछ बेचैन-सी होकर बार-बार उस दरवाजे की ओर देखती थी, जिससे होकर बैबूरिन बाहर गया था। आखिर उसकी प्रतीक्षा मानसी के लिए असह्य हो उठी। वह उठ बैठी और मुझसे क्षमा-याचना करते हुए उसी दरवाजे से वह भी बाहर निकल गई। पन्द्रह मिनट के बाद वह अपने पति के साथ फिर वापस लौटी। उन दोनों ही के चेहरे से—जैसा मैंने समझा था—चिन्ता का

भाव झलक रहा था, पर एकाएक बैबूरिन के चेहरे ने एक विभिन्न कटु, उन्मत्त-जैसा भाव धारण कर लिया।

"आखिर, इसका अन्त क्या होगा ?"—उसने एकाएक झटकती हुई सिसकती आवाज़ में, जो उसके लिए एक बिल्कुल नई बात थी, अपनी भयानक आंखों को इधर-उधर अपने चारों ओर बेचैनी के साथ दौड़ाते हुए कहना शुरू किया—"लोग इस आशा में दिन काट रहे हैं कि शायद एक दिन अवस्था सुधर जाय और हम स्वतन्त्रतापूर्वक रहते हुए स्वतन्त्र वायुमंडल में स्वच्छन्दता के साथ सांस ले सकें, पर यहां तो बिल्कुल उल्टा ही नजर आता है—हर तरफ हालत दिन-पर-दिन बिगड़ती ही जा रही है। हम गरीबों का शोषण करके धनवानों ने हमें बिल्कुल खोखला बना डाला है। अपनी जवानी में मैंने धैर्यपूर्वक सबकुछ बर्दाश्त किया। उन्होंने...शायद . मुझे पीटा भी.. हां।" उसने इतना कहा और फिर तेजी के साथ अपनी एड़ी के बल घूमकर और मेरी ओर झपट्टा-सा मारते हुए मुखातिब होकर बोला—"मेरे जैसे वृद्ध पुरुष को शारीरिक दण्ड दिया गया। हां, दूसरे अत्याचारों का मैं ज़िक्र नहीं करूंगा। किन्तु क्या सचमुच हमारे सामने इसके सिवा और कोई दूसरा उपाय नहीं है कि हम फिर उन पुराने दिनों की याद करें ? इस समय नवयुवकों के साथ जैसा व्यवहार हो रहा है, उससे तो धैर्य की सीमा का भी अतिक्रमण हो जाता है। उससे सहनशीलता की सीमा भंग हो चुकी है। हां, जरा ठहरिये।"

मैंने बैबूरिन को इस दशा में पहले कभी नहीं देखा था। मानसी तो भय के मारे ऐसी हो रही था कि काटो तो खून नहीं। बैबूरिन ने एकाएक खांसते हुए गला साफ किया और फिर एक

स्थान पर बैठ गया। अपनी उपस्थिति से बैबूरिन या मानसी को तंग करना अच्छा न समझकर मैंने वहां से चल देने का निश्चय किया और उन लोगों से विदा मांगने ही जा रहा था कि एकाएक दूसरे कमरे का दरवाजा खुला और एक आदमी की शक्ल वहां दीख पड़ी। यह शक्ल उस रसोइए की नहीं थी, बल्कि बिखरे हुए बाल और भयानक चेहरेवाले एक नवयुवक की थी।

"मामला कुछ गड़बड़ है, बैबूरिन, कुछ गड़बड़ है!" उसने शीघ्रतापूर्वक कम्पित स्वर में कहा और मुझ अपरिचित व्यक्ति को वहां देखकर उसी क्षण वहां से गायब हो गया।

बैबूरिन उस नवयुवक के पीछे दौड़ा। मैंने मानसी से हाथ मिलाया और अपने हृदय में अनिष्ट की आशंका करता हुआ वहां से चल दिया।

"कल पधारिए।" मानसी ने चिन्तापूर्वक धीरे-से कहा।

"अवश्य आऊंगा।"—मैंने जवाब दिया।

दूसरे दिन सुबह मैं बिछौने से उठा भी नहीं था कि मेरे नौकर ने मेरे हाथ में मानसी का एक पत्र दिया। उसने लिखा था—

"प्रिय पीटर पेट्रोविच, आज रात में पुलिस पैरोमन सेमोनिच को गिरफ्तार करके ले गई है, क़िले में या और कहीं, यह मैं नहीं जानती। उन लोगों ने मुझे कुछ नहीं बताया। पुलिस ने हमारे कुल कागज़ातों की छानबीन कर डाली, बहुतों पर मुहर लगा दी और उन्हें अपने साथ लेती गई। हमारी पुस्तकों और पत्रों की भी यही दशा हुई है। कहते हैं, शहर में बहुत-से लोग गिरफ्तार किये गए हैं। आप अनुमान कर सकते हैं कि मुझपर इस समय कैसी बीत रही है! अच्छा ही हुआ कि निकेडर वेवोलिच पूनिन यह सब देखने के लिए जीवित नहीं रहे। बहुत ही उपयुक्त

समय पर वह इस संसार से महाप्रस्थान कर गये। अब मुझे बतलाइये कि मैं इस हालत में क्या करूं ? मैं अपने लिए भयभीत नहीं होती—मैं भूखी नहीं मरूंगी—किन्तु पैरोमन सेमोनिच की चिन्ता मुझे बेचैन बनाये डालती है। हमारी स्थिति के लोगों के यहां आने में अगर आपको भय नहीं मालूम हो तो यहां पधारने की कृपा कीजिये। आपकी विश्वस्त

—मानसी

इसके आध घंटे के बाद मैं मानसी के पास पहुंच गया।

मुझे देखकर उसने अपना हाथ आगे बढ़ाया। यद्यपि उसके मुंह से एक शब्द भी नहीं निकला, किन्तु उसके मुखमंडल पर कृतज्ञता की एक झलक दौड़ गई। आज भी वह कल की ही पोशाक पहने थी। उसके चेहरे से यह साफ-साफ जाहिर होता था कि वह रात-भर बिल्कुल नहीं सोई थी। उसकी आंखें जगने के कारण लाल हो रही थीं—आंसुओं के कारण नहीं। वह फूट-फूटकर रोई नहीं थीं। उसकी वृत्ति भी उस समय रोने की नहीं थी। वह कुछ काम करना चाहती थी। अपने ऊपर आई विपत्ति से संग्राम करना चाहती थी। वही पुरानी स्फूर्ति, वही शक्ति, वही दृढ़संकल्प एक बार फिर मानसी में प्रकट हो आये थे। यद्यपि क्रोध से उसका कण्ठावरोध-सा हो रहा था, किन्तु क्रोध प्रकट करने के लिए उसे समय कहां था ? बैबूरिन को किस प्रकार बचाया जाय, उसके दुःख को कम करने के लिए किसके पास अपील की जाय, इन बातों को छोड़कर वह और किसी विषय में सोच ही नहीं सकती थी। वह फौरन जाना चाहती थी, अर्जी देना चाहती थी, उसके छुटकारे की मांग पेश करना चाहती थी। मगर जाय भी तो किसके पास ? किसे दरखास्त

दे और क्या अर्ज करे ? इन्हीं विषयों पर वह बातचीत करना चाहती थी—इन्हींके सम्बन्ध में मेरी सलाह लेना चाहती थी।

मैं उसे सान्त्वना देने लगा। धैर्य धारण करने का उसे उपदेश दिया। शुरू में तो सिवा इन्तजार करने के और कुछ करना ही नहीं था और यथासम्भव बैबूरिन के सम्बन्ध में पूछ-ताछ करके पता लगाना था। इस वक्त जब मामला शुरू भी नहीं हुआ था और न उसका रंग-ढंग ही मालूम हुआ था, कोई निश्चयात्मक उपाय काम में लाना निरी मूर्खता और अज्ञानता होती। यदि मैं कोई विशेष महत्व तथा प्रभावशाली व्यक्ति होता तो उस अवस्था में भी मुझसे इस काम में सफलता की आशा रखनी मूर्खता होती। पर मेरे-जैसा एक तुच्छ अधिकारी इस मामले में कर ही क्या सकता था ? बेचारी मानसी का क्या कहना ! उसके तो प्रभावशाली मित्र बिल्कुल थे ही नहीं।

इन सब बातों को स्पष्ट रूप में उससे कहना सहज नहीं था। किन्तु आखिर वह मेरे तर्क-वितर्क को समझ गई। यह बात भी उसने समझ ली कि मैंने जो यह कहा था कि इस समय सब प्रयत्न व्यर्थ होंगे, सो किसी अहंभाव से प्रेरित होकर नहीं कहा।

"लेकिन यह तो बतलाओ, मानसी"—मैंने कहना शुरू किया, जब वह एक कुरसी पर जा बैठी (अबतक तो वह खड़ी-खड़ी ही बातें कर रही थी, मानों वह बैबूरिन की सहायता के लिए फौरन रवाना हो जाना चाहती हो !)—"पैरोमन सेमोनिच इस उम्र में इस तरह के मामले में क्योंकर फंस गये ? मुझे तो यह विश्वास है कि इसमें सिर्फ ऐसे ही नौजवान पड़े हुए हैं, जैसा एक व्यक्ति कल तुम्हें चेतावनी देने आया था।"

"वे नौजवान हमारे दोस्त हैं।"—मानसी ने जोर देकर

कहा। इस समय भी उसकी आँखें पहले-जैसी ही चमक उठीं और तीर की तरह तेज़ होने लगीं। ऐसा मालूम पड़ता था, मानों उसके अन्तस्तल से कोई दृढ़ और दुर्दमनीय भाव उदित हो रहा हो। उसके इस भाव को देखकर मुझे अचानक 'एक नवीन ढंग की लड़की'—ये शब्द याद आ गये, जो टारहोव ने उसके सम्बन्ध में कभी प्रयुक्त किये थे। "जहां राजनैतिक सिद्धान्तों का सम्बन्ध है, वहां उम्र का कोई लिहाज़ नहीं।" मनासी ने 'राजनैतिक सिद्धान्त' इन दो शब्दों पर विशेष जोर दिया। उसे देखकर यह ख्याल होता था कि अपने समस्त शोक के बीच भी अपने को मेरे सामने इस नवीन अप्रत्याशित चरित्र में—एक सुसंस्कृत प्रौढ़ा स्त्री के रूप में, एक प्रजान्त्रतवादी की योग्य पत्नी के रूप में—प्रदर्शित करने में उसे कुछ अप्रियता नहीं मालूम पड़ती थी। "कुछ बूढ़े आदमी ऐसे होते हैं, जिनमें नौजवानों की अपेक्षा अधिक जवानी होती है।"—वह बोली—"और वे आत्म-त्याग भी अधिक कर सकते हैं। किन्तु सवाल यह नहीं है।"

"मैं समझता हूं, मानसी," मैंने कहा—"तुम बात को कुछ बढ़ाकर कह रही हो। पैरोमन सेमोनिच के चरित्र से परिचित होते हुए मुझे यह पहले ही जान लेना चाहिए था कि वह प्रत्येक सच्ची उमंग के साथ सहानुभूति रखेंगे, परन्तु इसके साथ-साथ मैंने उन्हें बराबर एक समझदार आदमी माना है। रूस में षड्यन्त्र करना कितना असंगत है, कितना अव्यावहारिक है—इसे वह अवश्य ही समझे बिना नहीं रह सकते, खासकर उनकी जैसी स्थिति है और उनका जो पेशा है।

"हां, अवश्य," मानसी कटु स्वर में मेरे कथन के बीच में ही बोल उठी—"वह एक काम करनेवाले आदमी हैं, मजदूर हैं

और रूस में तो केवल अमीर-उमरा ही षड़यन्त्रों में भाग ले सकते हैं, जैसा १४ दिसम्बर के षड़यन्त्र में हुआ था, यही न आप-के कहने का मतलब है ?"

"ऐसी हालत में आपको अब शिकायत ही किस बात की है ?"—मेरे मुंह से हठात् ये शब्द निकलनेवाले थे, किन्तु मैंने अपनेको रोका। "क्या आप समझती हैं कि १४ वीं दिसम्बर का परिणाम जो कुछ हुआ, वह ऐसा था कि उससे इस प्रकार के और भी प्रयत्न करने में उत्साह मिले ?"—मैंने जोर के साथ कहा।

मानसी ने त्यौरी बदल ली। "आपके साथ इस विषय में बात करना निरर्थक है।"—उसके नीचे लटके हुए चेहरे से मुझे यही भाव परिलक्षित होने लगा।

"क्या पैरोमन सेमोनिच इस मामले में बहुत काफी फंस गये हैं ?"—मैंने उससे साहस करके पूछा।

मानसी ने कोई उत्तर नहीं दिया। ऊपर छत के कमरे से बिल्ली की भूखी-सी बेढंगी 'म्याऊं-म्याऊं, की आवाज सुनाई पड़ी।

मानसी चौंक उठी। "आह, यह अच्छा ही हुआ कि निकेंडर लिवेनिच पूनिन को यह सब नहीं देखना पड़ा !" उसने हताश होकर बिलखते हुए कहा—"उसने नहीं देखा कि रात में पुलिस-वाले उसके उपकारकर्त्ता को, मेरे उपकारकर्त्ता को—या सम्भवतः संसार के सर्वश्रेष्ठ सत्यशील मनुष्य को—किस प्रकार निष्ठुरता के साथ पकड़ ले गये। उसने नहीं देखा कि पुलिस ने उस भद्र पुरुष के साथ उसकी इस अवस्था में कैसा बर्ताव किया, कितनी अशिष्टता के साथ उसे सम्बोधन किया, किस तरह

उन्होंने उसे डाँटा और उसके प्रति धमकियों का प्रयोग किया। सिर्फ इसलिए कि वह एक श्रमजीवी है! पुलिस का जो वह नौजवान अफसर था, वह भी सचमुच एक ऐसा नीतिभ्रष्ट, हृदयहीन दुष्ट मनुष्य था, जैसा मैंने अपने जीवन में कभी नहीं देखा।"

इतना कहते-कहते उसका कण्ठ रुद्ध हो गया। वायु-विताड़ित पत्र की तरह उसका सारा शरीर कांप रहा था।

आखिर उसका बहुत समय से दबा हुआ क्रोध उभड़ पड़ा, पुरानी स्मृतियां आलोड़ित हो उठीं और आत्मा की आकुलता के कारण बाह्यरूप में प्रकट होने लगीं। ऐसा मालूम पड़ने लगा मानों अब भी वे उसके अन्तर में जीवित हैं—विस्मृति के गर्भ में अन्तर्लीन नहीं हुई हैं। किन्तु उस क्षण उसे इस रूप में देखकर मेरे हृदय में जो धारणा उत्पन्न हुई, वह यह थी कि अब भी उसमें वह नया ढंग पहले जैसा बना हुआ है। अब भी उसकी प्रकृति वैसी ही भावुक एवं उमंगपूर्ण बनी हुई है। यदि उसमें कुछ अन्तर हुआ है तो सिर्फ इतना ही कि इस समय जिन उमंगों से वह उद्वेलित हो रही है, वे उमंगें उसकी जवानी के दिनों जैसी नहीं हैं। उसके साथ प्रथम साक्षात में मैंने उसके जिस भाव को आत्म-समर्पण के रूप में, उसकी सुशीलता के रूप में, समझा था—जो वस्तुतः था भी वैसा ही—वह संयत कान्तिविहीन दृष्टि, वह निस्तेज वाणी, वह शान्ति, वह सरलता—ये सब अतीत की बातें थीं, जो अतीत अब फिर लौटकर नहीं आ सकता।

इस समय तो वर्तमान में जो कुछ था, वही व्यक्त हो रहा था। मैंने मानसी को सांत्वना देने की चेष्टा की, अपने वार्तालाप

के विषय को व्यावहारिक रूप में ले जाने का प्रयत्न किया। मैं सोचने लगा—अब कुछ ऐसे उपाय करने चाहिए, जो इस समय अनिवार्य हों। पहले हमें यह ठीक-ठीक पता लगाना चाहिए कि बैबूरिन है कहां, उसके बाद बैबूरिन तथा मानसी के भरण-पोषण का उपाय करना चाहिए। इन सब कामों के करने में कुछ कम कठिनाई नहीं मालूम पड़ी, पर रुपया जुटाने की उतनी जरूरत नहीं थी, जितनी काम की, क्योंकि ऐसे मौकों पर काम दिलाना—जैसा हम सभी जानते हैं—बहुत जटिल समस्या होती है।

मैंने जिस समय मानसी से विदा ली, उस समय मेरे मस्तिष्क में नाना प्रकार के तर्क-वितर्क भरे हुए थे।

मुझे शीघ्र ही पता चल गया कि बैबूरिन किले में रक्खा गया है।

मुकदमे की कार्रवाई शुरू हुई और वह बहुत दिनों तक चलती रही। मैं हर हफ्ते मानसी से कई बार मिला करता था। उसने अपने पति से मिलकर अनेक बार बातचीत की थी। किन्तु जिस समय इस सारी शोचनीय घटना के सम्बन्ध में निर्णय किया जा रहा था, ठीक उसी समय मैं पीटर्सबर्ग में मौजूद न था। किसी आकस्मिक घटना के कारण मुझे मजबूरन दक्षिण रूस की यात्रा करनी पड़ी थी। मुझे मालूम हुआ कि मेरी अनुपस्थिति में बैबूरिन को उस मामले में रिहाई मिल गई थी। उसके विरुद्ध जो कुछ साबित हो सका था, वह बस इतना ही कि नौजवान लोग उसे एक ऐसा व्यक्ति समझकर, जिसके प्रति किसीको कुछ सन्देह नहीं हो सकता, उसके घर पर कभी-कभी सभाएं किया करते थे। यह भी उन सभाओं में उपस्थित होता था। मगर सरकार की आज्ञा से वह साइबीरिया के एक

पश्चिम प्रान्त में निर्वासित कर दिया गया। मानसी भी उसके साथ चली गई।

साइबीरिया से मानसी ने मुझे लिखा था—"पैरोमन सेमोनिच नहीं चाहता था कि मैं उसके साथ यहां आऊं, क्योंकि उसके विचारों के अनुसार किसीको अपने व्यक्तित्व का दूसरे के लिए बलिदान नहीं करना चाहिए। हां, अपने उद्देश्य के लिए बलिदान करना दूसरी बात है, पर मैंने उसे बताया कि इसमें बलिदान की कोई बात नहीं। जब मैंने मास्को में उससे कहा था कि मैं उसकी पत्नी बनूंगी, उसी समय मैंने मन में निश्चय कर लिया था कि अब सदा के लिए अविच्छिन्न भाव से मैं उसकी पत्नी बनकर रहूंगी। इसलिए यह सम्बन्ध हम दोनों के अन्त काल तक अटूट रहना चाहिए।"

: ४ :

१८६१

इस घटना को बीते बारह साल गुजर गये। रूस का हरेक आदमी जानता है और बराबर याद रक्खेगा कि सन् १८४९ और १८६१ के सालों के बीच रूस पर क्या-क्या बीती। मेरे व्यक्तिगत जीवन में भी बहुत-से परिवर्तन हो गये, पर उनके सम्बन्ध में अब विशेष कुछ कहने की आवश्यकता नहीं। जीवन में बहुत-सी नई बातें और नई चिन्ताएं आ गईं। बैबूरिन और उसकी पत्नी उस समय मेरे विचार-क्षेत्र से अलग हो गये। बाद में तो मैं उन्हें बिल्कुल ही भूल गया। फिर भी बहुत दिनों के अन्तर पर कभी-कभी मेरा मानसी से पत्र-व्यवहार हो जाया करता था। कभी-कभी एक-एक वर्ष से भी अधिक समय व्यतीत हो जाता, और मुझे मानसी या उसके पति का कोई समाचार नहीं मिलता था। मैंने

सुना कि १८५५ के बाद बैबूरिन को रूस लौटने की इजाजत मिल गई, परन्तु उसने साइबीरिया के उस छोटे शहर में ही रहना पसन्द किया, जहां भाग्य ने उसे जा पटका था और जिस स्थान को उसने अपना घर-जैसा बना लिया था, अपने लिए एक आश्रम एवं कार्य-क्षेत्र तैयार कर लिया था, मगर आश्चर्य की बात तो यह है कि इसके बाद ही सन् १८६१ के मार्च में मुझे मानसी का निम्नलिखित पत्र मिला :

"महामान्य पीटर पेट्रोविच, आपको पत्र लिखे इतने अधिक दिन बीत गये। मुझे यह भी विदित नहीं कि आप जीवित भी हैं या नहीं! यदि आप जीवित हों तो क्या आप हम लोगों के अस्तित्व के बारे में भूल नहीं गये होंगे? पर यह कोई बात नहीं है। आज मैं आपको लिखने से अपनेको रोक नहीं सकती। अबतक हम दोनों पति-पत्नी के बीच सब बातें पहले जैसी चल रही हैं। पैरोमन सेमोनिच और मैं दोनों अपने-अपने स्कूलों को लेकर संलग्न रहे हैं। उन स्कूलों की उन्नति क्रमशः हो रही है। इसके सिवा पैरोमन सेमोनिच पढ़ने-लिखने में तथा अपनी आदत के अनुसार पुराने विचार के लोगों, पादरियों तथा पोलैण्ड के देश-निर्वासितों से वाद-विवाद करने में रत रहा करते हैं। उनका स्वास्थ्य भी बहुत अच्छा रहा है। मेरी तन्दुरुस्ती भी ठीक रही है। किन्तु कल १९ फरवरी की घोषणा हमें प्राप्त हुई। पहले ही हमें अफवाहों से यह मालूम हो गया था कि पीटर्सबर्ग में आप लोगों के बीच क्या हो रहा है। किन्तु तो भी मैं उसका वर्णन नहीं कर सकती। आप मेरे पति को अच्छी तरह जानते हैं। दुर्भाग्यग्रस्त होने पर भी उनमें जरा भी परिवर्त्तन नहीं हुआ। इसके विपरीत वह पहले से भी अधिक बलिष्ठ और

फुर्तीले बन गये हैं। उनकी संकल्प-दृढ़ता बहुत बढ़ी-चढ़ी है, परन्तु इतने पर भी वह अपनेको नियन्त्रित नहीं कर सके। उस घोषणा को पढ़ते समय उनके हाथ कांपने लगे। इसके बाद उन्होंने तीन बार मेरा आलिंगन किया, तीन बार मेरा चुम्बन लिया, फिर कुछ कहने की कोशिश की, पर कुछ कह न सके। आखिर फूट-फूटकर रोने लगे। मैं यह सब देखकर चकित हो रही थी। इतने में वह हठात चिल्ला उठे—'शाबाश ! शाबाश ! भगवान जार की रक्षा करे।' पीटर पेट्रोविच, ये ही उनके शब्द थे। इसके बाद कहने लगे—'हे ईश्वर ! अब अपने इस सेवक को इस जीवन से छुट्टी दे दे।' फिर बोले—'यह पहला काम है, इसके बाद और भी इसी तरह के कार्य अवश्य होंगे।' फिर नंगे सिर वह इस महत्त्वपूर्ण समाचार को सुनाने के लिए अपने मित्रों के पास दौड़कर गये। उस दिन घोर पाला पड़ा था और बर्फ की आंधी भी आनेवाली थी। मैंने उन्हें रोकना चाहा मगर वह मेरी सुनना भी नहीं चाहते थे। जब वह घर लौटकर आये, उनका सारा शरीर, उनके बाल, उनका चेहरा, उनकी दाढ़ी—सबकुछ पाले से ढके हुए थे। उस समय उनकी दाढ़ी छाती तक बढ़ी हुई थी और उनके आंसू गालों पर जम गये थे। किन्तु वह बहुत ही प्रसन्न और स्फूर्तिवान दीख पड़ते थे। उन्होंने मुझसे घर की बनी हुई शराब की बोतल खोलने के लिए कहा और अपने मित्रों के साथ—जो उनके संग आये थे—जार की, समग्र रूस की तथा समस्त स्वतन्त्र रूसवासियों की स्वास्थ्य कामना करते हुए उसका पान किया। इसके बाद शराब का गिलास लेकर जमीन पर दृष्टि डालते हुए उन्होंने कहा—'निकेंडर, निकेंडर, निकेंडर (पूनिन) ! क्या तुम सुनते हो ? रूस

में अब गुलाम बिल्कुल ही नहीं रह गये। मेरे पुराने साथी, कब्र में आनन्द मनाओ!' उन्होंने यह भी कहा कि अब इसमें कोई हेरफेर नहीं हो सकता। यह एक प्रकार का वचनदान है—प्रतिज्ञा है। मुझे उनकी सब बातें याद नहीं हैं, किन्तु बहुत दिनों के बाद इस अवसर पर मैंने उन्हें इस प्रकार प्रसन्न देखा है, इसलिए मैंने आज आपको लिखने का निश्चय किया है, जिससे आप जान जायं कि सुदूर साइबीरिया के वन-प्रान्त में भी हम लोग किस प्रकार आनन्द मना रहे हैं, मगन हो रहे हैं और आप भी हम लोगों के इस आनन्द में सम्मिलित हो सकें।"

यह चिट्ठी मुझे मार्च के अन्त में मिली। मई मास के शुरू में मानसी की एक दूसरी चिट्ठी आई, जो बहुत ही संक्षिप्त में थी। उसने मुझे सूचित किया था कि उसके पति पैरोमन सेमोनिच बैबूरिन को ठीक उसी दिन, जिस दिन घोषणापत्र पहुंचा था, सर्दी लग गई और १२ अप्रैल को ६७ वर्ष की अवस्था में फेंफड़े के दाह से उनकी मृत्यु होगई! उसने यह भी लिखा था—"जहां मेरे पति की समाधि है, वहीं मैं रहना चाहती हूं और उनके छोड़े हुए काम को जारी रखना चाहती हूं, क्योंकि अपने जीवन के अवसान-काल में उन्होंने अपनी यही अन्तिम इच्छा प्रकट की थी और उनकी इच्छा को पूर्ण करना ही मेरा एकमात्र धर्म है।"

इसके बाद मानसी के सम्बन्ध में कोई समाचार मुझे नहीं मिला।